ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरु अंगद देव जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Website : www.sikhworld.info

विषय – सूचि

भुमिका

'क्रांतिकारी महामानव गुरू नानक देव' पुस्तक प्रकाशित होने पर पाठकों ने मुझ से पत्र द्वारा आग्रह किया कि दसों गुरूजनों का जीवन वृत्तांत इसी विधि द्वारा क्रमश: हिन्दी में प्रकाशित होना चाहिए। जिससे जन-साधरण लाभविन्त हो सके। मुझे इस सुझाव में तथ्य प्रतीत हुआ। मैंने अपने पाठकों की भावनाओ का सम्मान करते हुए भागीरथ प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। पाठकों की प्रेरणा मेरे लिए आर्शीवाद से कम नहीं थी। अत: परिणाम स्वरूप इस शृंखला में ये पुस्तकें अस्तित्व में आई हैं, किन्तु इन महान् विभूतिओं का जीवन चरित्र-चित्रण करना इतना सहज कार्य न था। क्योंकि तत्कालीन प्रशासन के अत्याचार एवं धार्मिक असहिष्णुता जोरों पर थी और समाज भी जाति-पाति के भेद भाव से पीड़ित था। अत: जन-साधरण अपने को असहाय, आतंकित अनुभव कर रहा था। ऐसे में नई चेतना एवं स्फूर्ति भर देने वाले लोक नायक (प्राक्रर्मी पुरुष) ये गुरु नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरु अंगद देव जी और उन के अनुयायी श्री गुरु अमर दास जी ही थे। जिन्होंने नये दिशा-निर्देश दिये और समाज में जागृति लाने का सफल कार्य किया। मुझे आशा हैं यह मेरा प्रयत्न पाठकों की भावनाओं के अनुरुप सिद्ध होगा। अब मेरा प्रयास है कि मैं दशम गुरु श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी का जीवन वृत्तात पाठकों की मांग पर रोचक शैली में तैयार कर उन को भेंट करू। मुझे पूर्ण भरोसा है यह कार्य भी शीघ्र ही सम्पन हो जाएगा।

"जीवन वृतांत श्री गुरू अंगद देव जी"

श्री गुरू अंगद देव जी का पहला नाम भाई लहणा जी था। आप का प्रकाश (जन्म) 31 मार्च सन् 1504 (तद्‌नुसार 5 बैसाख संवत् 1561) को ग्राम मत्ते की सराय, जिला फिरोजपुर, पंजाब में पिता फेरूमल जी व माता दया कौर जी के घर में हुआ।

आपके पिता फेरूमल जी स्थानीय चौधरी तख्त मल के पास आय-व्यय का हिसाब किताब रखने के लिए मुनीम का कार्य करते थे। आपके पिता फारसी के विद्वान थे तथा गणित के अच्छे ज्ञाता होने के कारण बही-खाते के कार्य में अच्छी तरह निपुण थे। अत: उन्होंने अपने पुत्र लहणा जी के लिए शिक्षा-दीक्षा का विशेष प्रबन्ध किया। वे सनातन धर्म को मानने वाले थे, अत: वैष्णों देवी के भक्त थे। वे धार्मिक कार्यों में बहुत रूचि रखते थे। उनकी दिनचर्या में देवी पूजन एक अनिवार्य अंग था। आप वर्ष में एक बार देवी दर्शनों के लिए जम्मू के निकट कटड़ा नगर जाया करते थे। उनके इन कार्यों का बालक लहणा जी पर पूर्ण प्रभाव था। फेरूमल जी एक बहुत ही उज्जवल जीवन चरित्र वाले व्यक्ति थे।

लहणा जी पर पिता के संस्कारों का गहरा प्रभाव था। वह समाज सेवा में बहुत रूचि रखते थे। अत: दीन-दुखियों की सेवा आपका मुख्य लक्ष्य हुआ करता था। आप को जब भी समय मिलता यात्रियों को जल पिलाने की सेवा करते थे। आप सच्चे एवं सुच्चे जीवन को बहुत महत्त्व देते थे। बाल्यकाल में जब आप अपन मित्रों के साथ खलते थे तो कभी भी छल-कपट का खेल ना खेलते और न ही खेलने देते थे।

चौधरी तख्तमल की बेटी समराई जी जिन का घरेलू नाम विराई था फेरूमल जी की मुँह बोली बहन थी। अत: वह अपने भतीजे लहणा से बहुत स्नेह करती थी। उनका विवाह खडूर नगर के एक सम्पन्न परिवार के चौधरी महमे के साथ हो गया। कुछ समय के पश्चात बुआ विराई जी ने अपने भतीजे लहणा जी का विवाह भी खडूर से दो मील की दूरी पर स्थित संधार गांव के एक समृद्ध परिवार देवी चन्द मरवाहा की सूपुत्री कुमारी खेमवती के साथ करवा दिया जिन का घरेलू नाम खीवी जी था। यह विवाह सन् 1519 में हुआ। उस समय लहणा जी की आयु केवल 15 वर्ष की थी।

आपने अपने पिता के सहयोग से मत्ते की सराय में एक छोटा सा व्यापार आरम्भ किया। इस व्यापार में किसानों से उनके उत्पाद खरीदकर उसके बदले में उन लोगों को घरेलू आवश्यकता की सामग्री देना था जो कि धीरे-धीरे विकसित होने लगा परन्तु विदेशी आक्रमणकारियों के कारण देश में स्थिरता न रही। बहुत से नगरों में अराजकता फैल गई। कानून-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने के कारण लोग दिल्ली-पेशावर के मुख्य मार्ग के निकटवर्ती क्षेत्रों को छोड़कर दूर-दराज़ के क्षेत्रों में बसना उचित समझने लगे। अत: ऐसे में लहणा जी अपने ससुराल के निकट अपनी बुआ जी के नगर खडूर आ बसे। उस समय आपकी आयु 20 वर्ष की थी। खडूर नगर में भी आपने वही व्यवसाय अपनाया जो धीरे-धीरे फलने-फूलने लगा। यहाँ पर भी आपके पिता श्री फेरूमल जी ने दुर्गा देवी के भक्तों की एक मण्डली बना ली जो वर्ष में एक बार देवी दर्शनों लिए साथियों सहित जाया करते थे। 1626 में उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा जिससे उनका देहान्त हो गया। अब घर का सभी प्रकार का कार्यभार लहणा जी के कंधों पर आ पड़ा। लहणा जी की क्रमश: चार संतानें हुई - पुत्र दातु जी, दासु जी, पुत्रियां अमरो जी तथा अनोखी जी। इस प्रकार आप खडूर नगर में खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहे थे।

शाश्वत ज्ञान की अभिलाषा

एक दिन प्रात:काल खडूर नगर के कुएं पर स्नान करते समय भाई लहणा जी ने एक अन्य व्यक्ति के मुख से मधुर स्वर में कुछ पंक्तियां सुनी जो स्थानीय पंजाबी भाषा में थी जिन का अर्थभाव बिलकुल स्पष्ट था जिस में जिज्ञासु का आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा दी जा रही थी कि हे जिज्ञासु यदि तुम प्रभु के दरबार में उज्जवल मुख लेकर जाना चाहते हो तो अपना प्रत्येक कार्य बहुत सावधानी से करो क्योंकि व्यक्ति के कर्म ही उस के बन्धनों का कारण हैं।

जितु सेविऐ सुखु पाईऐ, सो साहिबु सदा समा:लिऐ।।
जितु कीता पाईऐ आपणा, सा घाल बुरी किउ घालीऐ।।
मंदा मुलि ना कीचई, दे लंमी नदरि निहालीऐ।।
जिउ साहिब नालि न हारीऐ, तेवेहा पासा ढालीऐ।।
किछु लाहे उपरि घालीऐ।।21।।

पृष्ठ न. 474

यह पंक्तियां गाने वाले व्यक्ति थे खडूर नगर के भाई जोधा जी जो कि इसी गांव में एक श्रमिक का कार्य करते थे। जैसे ही ध्यान पूर्वक यही पंक्तियां पुन: भाई लहणा जी ने सुनी तो उन्हें अपनी सभी समस्याओं का समाधान इस वाणी में दृष्टिमान हो आया। स्नान करने के पश्चात भाई लहणा जी ने भाई जोधा से नम्रता पूर्वक पूछा – ''आप जो रचना पढ़ रहे थे किस महापुरूष की है ?'' इस पर भाई जोधा जी ने उत्तर दिया – ''रावी नदी के तट पर नए बसे नगर करतारपुर में एक पूर्ण समर्थ पुरुष रहते हैं जिन का नाम नानक देव है वही इस वाणी के रचियता हैं। यह सुनकर भाई लहणा जी को स्मरण हो आया कि मेरी बुआ जी भी तो इन्हीं महापुरूषों के विषय में प्राय: चर्चा करती रहती हैं और वह उनके दर्शनों को कभी-कभार जाती भी रहती हैं। यह सब सोचकर भाई लहणा जी मन ही मन विचार करने लगे कि मुझे भी इन महापुरूषों के दर्शन अवश्य करने चाहिए क्योंकि इन की वाणी में जीवन का सार है। जबकि हम लोग जो देवी पूजा की स्तुति में भेंटे गाते हैं वह आध्यात्मिक दुनियाँ में नगण्य होकर रह जाती हैं क्यों कि वह कोरी कल्पना मात्र से रची गई होती हैं जब कि यह अनुभव ज्ञान पर आधारित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रचियता प्रभु में विलीन होकर गा रहा है। अब लहणा जी ने एक निर्णय लिया कि इस वर्ष देवी दर्शनों के लिए जाऊँगा तो रास्ते में रूककर इन महापुरूषों के दर्शन भी अवश्य ही करता जाऊँगा शायद इन के यहाँ मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाए, जिस के लिए मैं कई वर्षो से प्रयत्न कर रहा हूँ।

भाई लहणा जी, अपने पिता फेरूमल जी के देहांत के पश्चात उनके स्थान पर खडूर नगर के देवी भक्तों का नेतृत्व किया करते थे इस वर्ष भी उन्होंने भक्त मण्डली को कटड़ा (देवी के स्थान) ले जाने का कार्यक्रम बनाया। अपनी पन्सारी की दुकान का कार्यभार अपने पुत्रों को सौंप कर स्वयं निश्चित समय मन में गुरू दर्शनों की अभिलाषा लिए देवी भक्तों की मण्डली लेकर चल पड़े रास्ते में रावी नदी पार करके करतारपुर पहुँचे परन्तु अपने अन्य साथियों को नगर के बाहर सराय में विश्राम करने का आग्रह किया।

भाई लहणा जी गुरुदेव के समक्ष

श्री गुरू नानक देव जी, अपनी दिन चर्या अनुसार प्रात:काल के दरबार की समाप्ति कर अपने खेतों में कुंए से पानी दे रहे थे, उस समय एक घुड़ सवार युवक उन के निकट आया और पूछने लगा, ''बाबा जी मुझे नानक देव जी के यहाँ जाना है, कृपया आप रास्ता बता दें।'' इस पर गुरुदेव ने कहा, ''युवक, मैं तुम्हें वहीं पहुँचा देता हूँ।'' और वे घोड़े की लगाम हाथ में थाम कर गलियों में चल पड़े। हवेली पर पहुँचने के पश्चात् आप ने युवक से कहा-आप घोड़ा सामने वृक्ष के साथ बांध दें और अंदर चले आयें। इतने में गुरुदेव अपने आसन पर जा बिराजे। घोड़ा बांधाकर जब युवक अन्दर दरबार स्थान पर पहुँचा तो चकित हुआ और पूछने लगा कि आप ही गुरू नानक देव है। इस पर गुरुदेव ने हंसकर कहा- ''हां मैं ही नानक हूँ।''

युवक ने झेंपते हुए कहा – ''क्षमा करें मैं आप को पहचानता नहीं था नहीं तो ऐसी अवज्ञा कभी न करता। मैं घोड़े पर सवार था और आप मेरे घोड़े के मार्ग दर्शक। यह मुझसे अनर्थ हो गया है।'' गुरुदेव ने उत्तर में कहा – ''युवक तुम्हारा नाम क्या है ?'' युवक बोला – ''मेरा नाम लहणा है।'' यह सुनकर गुरुदेव ने टिप्पणी की – ''तुम्हारा नाम लहणा है तो तुम लेनदार हो और हम देनदार हैं बस यही कारण था कि तुम घोड़े पर सवार थे और हम पैदल तुम्हारे घोड़े के मार्ग दर्शक, इस में चिन्ता करने की कोई बात नहीं।''

भाई लहणा जी, गुरुदेव की नम्रता, सादगी और साधारण किसानों का जीवन देखकर अति प्रभावित हुए। गुरुदेव ने उन से कुशल क्षेम पूछी – भाई लहणा जी ने उत्तर में बताया, ''मैं खडूर नगर का एक छोटा सा दुकानदार हूँ। प्रतिवर्ष वैष्णव माता (दुर्गा) जी के दर्शनार्थ जत्था लेकर जाता हूँ। इस वर्ष भी वहीं जा रहा हूँ। मेरे साथी नगर के बाहर मुख्य सड़क के किनारे की सराय में ठहरे हैं। केवल मैं ही आप के दर्शनों को आया हूँ क्योंकि मैंने एक दिन प्रात:काल पनघट पर स्नान करते समय आप के एक सिक्ख भाई जोधा जी से आप की बाणी सुनी थी जो कि बहुत प्रभावशाली थी जिसके कारण मेरा मन आप के दर्शनों के लिए लालायित रहने लगा था अत: आज अवसर पाते ही चला आया हूँ।''

गुरुदेव ने, भाई लहणा जी का जलपान इत्यादि से अतिथि सत्कार किया तथा विश्राम के लिए एक विशेष कमरे में ठहराया और संध्या के दीवान में सम्मिलित होने को कहा-संध्या के दीवान में संगत मिलजुल कर कीर्तन करने लगी तत्पश्चात् गुरुदेव ने प्रवचनों में कहा-

देवी देवा पूजीऐ भाई किआ मागउ, किआ देहि ।।
पाहणु नीरि परवालीऐ भाई जल महि बूडहि तेहि ।।

राग सोरठि, 638

समस्त विश्व का कर्त्ता एक पारब्रह्म परमेश्वर ही है। अत: उस के द्वारा उत्पन्न देवी, देवताओं के आगे कभी हाथ नहीं पसारने चाहिए क्योंकि उन को भी उसी परमेश्वर से शक्ति प्राप्त होती है जिस ने जगत की सृजना की है इस लिए शक्ति प्राप्ति के लिए सीधो उसी की उपासना तथा आराधना करें, जो सभी का स्वामी है। यदि स्वामी को त्याग कर दासी से मांगेगे तो क्या मिलेगा? यह क्रिया उसी प्रकार की होगी जिस प्रकार कोई पुरुष मक्खन प्राप्ति की इच्छा से पानी को मथना शुरू कर दे, परिणाम स्वरूप वह पश्चाताप मे पीड़ित होगा और उस का परीश्रम निष्फल

जाएगा।

भाई लहणा जी को ये युक्ति तथा तर्क संगत प्रवचन बहुत अच्छे लगे। उन्होंने मन में विचार किया मैं आज तक मन की शान्ति की अभिलाषा के लिए भटकता रहा हूँ। गुरुदेव के कथन अनुसार तो मेरा सब परीश्रम व्यर्थ चला गया है। वस्तुत: मुझे तत्व वस्तु की तो प्राप्ति हुई भी नहीं। मैं अब इन महापुरुषों से वह ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा, जिस से मैं अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण कर निष्काम हो जाऊँ। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता ही न रहे जिस से मेरी मांगने की भावना सदैव के लिए समाप्त हो जाए।

ऐसा विचार कर भाई लहणा जी ने गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की, हे गुरुदेव जी! मैं आप की निकटता चाहता हूँ, जिस से मैं परमार्थ की सूक्ष्मता का गहन अध्ययन कर सकूं। गुरुदेव ने उत्तर में कहा – ''भाई लहणा, यह तो तभी सम्भव हो सकता है जब तुम स्वयं को पूर्णत: समर्पित कर दो, अन्यथादुविधा-पूर्ण मन से किसी कार्य की सिद्धि नहीं कर पाओगे।''

भाई लहणा जी ने तुरन्त इस कार्य के लिए अपने मन को तैयार कर सहमति दे दी कि वह सदैव सर्वत्र न्योछावर करने के लिए तत्पर है। बस उसे आत्म ज्ञान चाहिए।

इस पर गुरुदेव ने शर्त रखी और कहा – ''भाई देखो! यह मार्ग कठिन है। इस पर पग बढ़ाने से पहले भली भान्ति सोच विचार कर लो। इस प्रेम मार्ग पर एक बार बढ़ने के पश्चात् फिर पीछे मुड कर कभी नहीं देखना होगा। यह मार्ग बलिदान मांगता है, प्राणों की आहुति मांगता है, जिस कारण सिर पर कफन बान्ध कर चलना पड़ता है! तभी क्रांति सम्भव होती है, जिस की प्राप्ति के पीछे लक्ष्य छिपा होता है।

भाई लहणा जी ने उत्तर में कहा-यदि मुझे लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है तो मैं उस के लिए तन, मन, धन से पूर्णत: समर्पित रहूंगा। भले ही आप कभी भी परीक्षा ले सकते हैं। गुरुदेव ने भाई लहणा जी को तब आशीष दी कि उसकी कामना पूर्ण हो-

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ ॥
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै ॥
सिरु दीजै काणि ना कीजै ॥ *राग प्रभाती, पृष्ठ 1412*

भाई लहणा जी ने दूसरे दिन अपने साथियों को यह कह कर विदा कर दिया कि वे लोग अपनी यात्रा पर आगे चले जाएं किन्तु वह स्वयं अब कहीं नहीं जाएगा क्योंकि वह जिस उद्देश्य को लेकर घर से चला था वह वहीं पूर्ण हो गया है।

भाई लहणा जी की भेंट गुरुदेव के अनन्य सिक्ख बाबा बुद्धा जी से हुई जो कि उनकी सम आयु के थे। उन दोनों की जल्दी की एक ही लक्ष्य होने के कारण प्रगाढ़ मित्रता हो गई। एक दिन बाबा बुद्धा जी ने भाई लहणा जी से उनके परिवार के विषय मे पूछा तो उन्होंने अपना पारिवारिक परिचय इस प्रकार दिया-मेरा जन्म मते की सराय जिला फिरोजपुर में सन् 1504 में पिता फेरूमल जी के यहाँ माता राम कौर की कोख से हुआ है। जीविका के लिए इन दिनों खडूर नगर में पंसारी की दुकान चला रहा हूँ। मेरी पत्नी का नाम खीवी है। मेरी चार सन्तानें हैं। दो पुत्र तथा दो पुत्रियां। जिन के क्रमश: नाम है-दातू भाई, दासू भाई, बीबी अमरो तथा बीबी अनोखी। इन दिनों मैं अपने भांजे को दुकान का कार्यभार सौंप कर यहाँ आया हुआ हूँ। कुछ दिनों के लिए घर में वापिस जाकर, काम-काज को यथा पूर्वक चलता रहने के लिए, देख भाल कर पुन: गुरू चरणों में सेवा के लिए लौट आऊंगा। इस प्रकार कुछ दिनों पश्चात् भाई लहणा जी गुरुदेव से आज्ञा लेकर, घर की देखभाल के लिये अपने नगर खडूर चले गए।

भाई लहणा जी गुरू सेवा में समर्पित

श्री गुरू नानक देव जी एक दिन अपनी दिन चर्या के अनुसार धान के खेतों में से घास निकाल रहे थे तो भाई लहणा जी उन से मिलने आए। गुरुदेव ने उन से कुशल क्षेम पूछी कि घर पर सब मंगल है ? लहणा जी ने उत्तर में बताया कि घर का कार्यभार अपने भानजे को सौंप कर तथा उचित प्रबन्ध कर वे उन की सेवा में उपस्थित हुए हैं। इस पर गुरुदेव ने कहा यदि सेवा के लिए उन के पास आए हो तो घास की वह गांठ उठा लो और घर पर जा कर मवेशीयों को डाल दो। लहणा जी ने उत्तर में कहा – ''जैसी आप की आज्ञा (सत्य वचन) जी'', और धान के खेतों का कीचड़ नुमा गीला घास, तुरन्त सिर पर उठा लिया। खेतों से घर तक पहुँचते-पहुँचते घास में से टपक रही पानी की बून्दों से लहणा जी के रेशमी वस्त्र कीचड़ के दागों से भर गए। जब इस दृश्य को गुरू के महल (माता सुलक्खणी जी) ने देखा तो उन से रहा न गया। इस कार्य को उन्होंने भक्त का तिरस्कार माना और गुरुदेव से कहा – ''यह कार्य किसी दूसरे श्रमिक को सौंप दिया होता, आप की बेपरवाही के कारण खडूर नगर से 50 कोस की पैदल यात्रा कर अभी-अभी आए श्रद्धालु के बहुमूल्य रेशमी वस्त्र कीचड़ से खराब हो गए हैं।

गुरुदेव ने उत्तर में कहा-''प्रिय, ध्यान से देखो, यह घास की गांठ नहीं त्रिलोकी का छत्र है। यह कीचड़ की बून्दें नहीं, केसर के छींटे है ।'' यह सुनकर सुलक्खणी जी ने कहा – ''वह तो ठीक है किन्तु उन को विश्राम की सख्त आवश्यकता थी, क्योंकि भेंट में पहाड़ी नमक को वह सिर पर उठाकर लाए हैं।'' गुरुदेव ने उत्तर दिया – ''आप इन बातों की चिन्ता न किया करें।''

बूझो तो जाने

श्री गुरू नानक देव जी एक दिन सत्संग की समाप्ति पर अपने निजी सेवकों के साथ परिवार में बैठे थे और अपने विनोदी स्वभाव के अनुसार अपनी मुट्ठी मे कोई वस्तु बन्द कर पूछने लगे, ''बेटा श्री चन्द बताओ तो मेरी मुट्ठी में क्या है ?'' श्री चन्द जी ने अनुमान लगाया और बताया, ''पिता जी आपने अपनी मुट्ठी में रुपये का सिक्का रखा हुआ है।'' गुरुदेव ने इसी प्रश्न को पुन: लक्खमी दास से पूछा तो उन्होंने भी कहा, ''इस में एक सिक्का ही मालूम होता है।'' इस पर सेवकों की तरफ संकेत हुआ कि बारी-बारी वे भी बताएं। सभी अनुमान लगाने लगे। जब आप जी ने भाई लहणा जी को संकेत किया तो उन्होंने विनम्रता पूर्वक कहा, ''हे गुरुदेव जी! आप की मुट्ठी में समस्त विश्व की बरकतें हैं। यदि यह मुट्ठी किसी के लिए खुल जाए तो उसे ऋद्धि-सिद्धि, ब्रह्मज्ञान, भक्ति-शक्ति अथवा प्रभु में अभेदता (मोक्ष) प्राप्त हो सकती है।'' इस उत्तर को सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हुए और कहने लगे, ''बात तो रहस्य जानने में है, जो दूर दृष्टि का स्वामी होगा उसी के हाथों सफलता की कुंजी रहेगी।''

उचित उत्तर

श्री गुरू नानक देव जी एक रात भीषण गर्मी के कारण अपने निकटवर्ती सेवकों के साथ विश्राम कर रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि बिस्तर छोड़ने का समय हो गया है। उन्होंने बेटे श्री चन्द जी को पूछा, ''बेटा देखना रात्रि कितनी व्यतीत हुई है तथा कितनी शेष है।'' श्री चन्द जी उठे उन्होंने नक्षत्र विज्ञान से अनुमान लगाकर बताया कि ठीक अर्द्ध रात्री का समय है। इस पर गुरुदेव ने पुन: लक्खमी दास को आदेश दिया, ''बेटा तुम भी समय का ठीक-ठीक अनुमान लगाओ।'' वह भी नक्षत्र विज्ञान के आधार पर यही अनुमान लगा पाए कि अर्द्धरात्रि ही शेष है और सातवां पहर प्रारम्भ हो गया है किन्तु गुरुदेव ने पुन: सेवकों को कहा, ''आप सभी जाओ और नक्षत्र विज्ञान को समझो और बताओ रात कितनी बाकी है।'' बुड्ढा जी उठे उन्होंने अनुमान लगाया और कहा, ''हे गुरुदेव ! अनुमानत: रात्रि तो आधी ही व्यतीत हुई है और आधी ही शेष है। किन्तु जब गुरुदेव ने भाई लहणा जी से यही प्रश्न दोहराया तो उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक उत्तर दिया, ''हे गुरुदेव जी ! उस प्रभु की लीला अनुसार कुछ व्यतीत हो गई है और कुछ बाकी है।'' इस उचित उत्तर को सुनकर गुरुदेव सन्तुष्ट हो गए।

अर्द्धरात्री में वस्त्रों की धुलाई

श्री गुरू नानक देव जी नियमानुसार अर्द्धरात्री में शौच-स्नान से निवृत होकर अपने निजी आसन पर बिराजमान हुए। उन्होंने महसूस किया कि उनके वस्त्र पसीने के कारण गंदे हो गए हैं। प्रात:काल दरबार लगने पर जब संगत में यह वस्त्र भद्दे दिखाई पड़ेंगे तो ठीक न होगा। अत: उन्होंने बेटे श्री चन्द जी को बुला कर कहा, ''बेटा यह वस्त्र अभी धो डालो ताकि दरबार के समय पहने जा सकें।'' श्री चन्द जी ने उत्तर दिया, ''पिताजी आप चिन्ता न करें सुबह धुलवा लेंगे आप अभी अन्य वस्त्र धारण कर लें।'' गुरुदेव ने उत्तर सुनते ही पुन: छोटे बेटे लक्खमी दास को आदेश दिया, ''बेटा मेरे कपड़े धोकर ले आओ।'' उन्होंने भी कहा, ''पिता जी इस समय कपड़े धोना उचित नहीं है। आप दूसरे वस्त्र धारण कर लें।'' इस पर गुरुदेव ने अन्य सेवकों की तरफ संकेत किया कि उन में से कोई जा कर वह कपड़े धोकर ला दे। संकेत पाते ही भाई लहणा जी ने कपड़े लिए और रावी नदी पर जा पहुँचे। देखते ही देखते अर्द्ध चन्द्रमा उदय हो गया। भाई लहणा जी ने वहाँ पर सभी कपड़े धोये और रेत पर सूखने डाल दिये। भीषण गर्मी के कारण धीमी-धीमी गति की पवन के झोकों से वस्त्र तुरन्त सूख गए। और उन्हें लेकर भाई लहणा जी लौट आए और स्वच्छ वस्त्र गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत किये। जिन्हें देखकर गुरुदेव गदगद हो गए और कह उठे, ''सिक्खी उसी की प्रफुल्लित होती है जो आज्ञा का पालन करते हुए पुरुषार्थी जीवन व्यतीत करता है।''

ओलों की वर्षा

श्री गुरू नानक देव जी, दैनिक नियमानुसार एक दिन अमृत बेला में अपने निजी सेवकों के साथ रावी नदी में स्नान करने लगे तो भाई लहणा जी उन के कपड़ों के पास प्रतीक्षा मे बैठै थे। तभी अकस्मात काली घटाएं छा गई,। और ओले बरसने लगे। अन्य सेवकों ने तूफान उमड़ता देखकर वृक्षों की आड़ ली परन्तु भाई लहणा जी ने गुरुदेव के कपड़े इकट्ठे कर अपने सीने से चिपका लिए और उन पर औंधो होकर बैठ गए, जिस से वे भीगने न पाएं। खूब ओले बरसे जिस से सर्दी बहुत बढ़ गई। किन्तु भाई लहणा जी गुरुदेव की प्रतीक्षा में वही डटे रहे, टस से मस नहीं हुए। इस अवधि में भाई जी को ठंड के कारण बेहोशी छा गई। गुरुदेव जब नदी से लौटे तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अन्य सेवकों को बुलाकर भाई लहणा जी को घर पहुँचाया और उनका उपचार करने लगे। लहणा जी के स्वस्थ होने पर गुरुदेव ने उन से पूछा, ''बेटा, अपने साथियों की तरह तुमने वृक्षों की आड़ क्यों नहीं ली ?'' इस के उत्तर में भाई लहणा जी कहने लगे, ''मैं आप को वहाँ छोड़ कर कैसे जा सकता था फिर आप के कपड़े भी तो भीग जाते।'' इस उत्तर को सुनकर गुरुदेव गद्‌गद् हो गए।

कड़ी साधाना

श्री गुरू नानक देव जी के दरबार में संगतों का आवागमन सदैव बना रहता, जिस कारण दिन-रात लंगर तैयार मिलता। गुरुदेव के स्वयं के खेतों का अनाज भी लंगर के कार्यो में प्रयोग होता। एक बार मौसम खेती के अनुकूल न रहा, अत: खेती अच्छी न हुई। पूरे देश में अनाज का अभाव महसूस होने लगा। जिस कारण अति गरीबी की स्थिति में रहने वाले लोगों के लिए लंगर एक आकर्षण बन गया। भूख के मारे लोग दूर-दूर से लंगर प्राप्ति के लिए आने लगे, जिस कारण लंगर (जाति पाति रहित सामूहिक भोजन) पर दबाव सदैव बना रहता। गुरु-मर्यादा अनुसार सभी सेवक लंगर में एक पंक्ति में बैठ कर संगत के साथ, एक जैसा भोजन ही करते, इसी कारण सभी को पर्याप्त भोजन मिल जाता। यही स्थिति लम्बे समय तक बनी रही। परिणाम स्वरूप सेवकों को कठिनाइयां आड़े आने लगी। कुछ सेवक तो घरों को लौट गए किन्तु भाई लहणा जी, भाई बुढ़ढ़ा जी वहीं सेवा में तत्पर रहे। गुरुदेव जी ने यह देख कर भाई लहणा जी को कई बार संकेत से कहा, ''तुम क्यों परेशान होते हो, यहाँ तो यही स्थिति बनी रहेगी। जाओ, घर का सुख आराम भोगो।'' परन्तु लहणा जी अड़िग बने रहे और सभी प्रकार की कठिनाइयाँ झेलते रहे। इस सब को देखकर गुरुदेव मन ही मन भाई लहणा जी की सेवा पर रीझ उठे।

मृतक चूहे के शव की खोज

श्री गुरू नानक देव जी एक दिन धर्मशाला के भवन मे दुर्गन्ध अनुभव करने लगे। पास बैठे बेटों को उन्होंने आदेश दिया, ''देखो तो यह दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है ?'' बेटों ने इस आदेश को आगे सेवकों को दे दिया और कहा, ''जल्दी खोजो दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है ?'' जल्दी ही सेवकों ने खोज लिया कि एक चूहे का शव सड़ा हुआ अल्मारी के पीछे दबा पड़ा है परन्तु दुर्गन्ध के कारण उस शव को वहाँ से कोई हटाने को तैयार नहीं हुआ। सभी लोग सफाई कर्मचारी की खोज में निकल पड़े। जैसे ही भाई लहणा जी को इस बात की सूचना मिली जो कि उस समय बर्तन साफ करने की सेवा में लीन थे। वह तुरन्त उस स्थान पर पहुँचे जहां से दुर्गन्ध आ रही थी और उन्होंने बिना किसी की सहायता से यह कार्य क्षण भर में कर दिया तथा तत्पश्चात् उस स्थान को भी जल से धो कर पोचा लगा दिया।

यह देखकर गुरुदेव अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने प्रवचन में कहा, ''सेवक वही जो आज्ञा का पालन स्वयं करे, जो सेवक आज्ञा को दूसरों पर लाद देते हैं अथवा अन्य साधन अपना कर खाना-पूर्ति करते हैं तथा किसी विशेष कार्य के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं वे लक्ष्य की प्राप्ति कदाचित नहीं कर सकते।''

धर्मशाला की दीवार का पुनः निमार्ण

श्री गुरू नानक देव जी एक रात को सातवें पहर (अर्द्ध रात्री) को धर्मशाला में पहुँचे। कई दिनों से धीमी गति की वर्षा हो रही थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। उस समय धर्मशाला की एक कच्ची दीवार गिर गई। जिसको देखकर गुरुदेव ने महसूस किया कि दीवार गिरने के कारण र्मशाला के भीतर भी ठंड बढ़ गई है। अतः शीत लहर के कारण संगत ठीक से नहीं बैठ पायेगी। इस लिए आप ने अपने जयेष्ठ पुत्र श्री चन्द जी को आदेश दिया, ''बेटा! इस दीवार को तैयार करने का प्रयत्न तुरन्त करो।' श्री चन्द जी ने, गुरुदेव को उत्तर दिया - ''हे पिता जी ! अभी रात है दिखाई नहीं देता तथा वर्षा भी हो रही है, ऐसे समय में गारे से दीवार तैयार करना कठिन ही नहीं असम्भव है।'' श्री चन्द जी के इन्कार करने पर गुरुदेव ने पुनः वही बात छोटे बेटे लक्ख्मी दास को कही कि बेटा जैसे-तैसे भी हो दीवार का निर्माण अभी करना अति आवश्यक है। उन्होंने कहा - ''पिता जी भैया जी ठीक ही कह रहे हैं। सूर्योदय होने पर ही कुछ किया जा सकता है।'' गुरुदेव ने भाई बुड्ढा जी को संकेत किया - ''बेटा, तुम यह कार्य अभी आरम्भ कर दो।'' किन्तु उन्होंने भी कहा - ''गुरुदेव गारा टिकेगा नहीं। अतः परीश्रम व्यर्थ जायेगा।'' इस उत्तर को सुनकर गुरुदेव ने भाई लहणा जी की तरफ संकेत किया, ''भाई लहणा! तुम इस कार्य को अभी प्रारम्भ कर दो ताकि संगत की एकत्रता तक दीवार बन कर तैयार हो जाए।'' भाई लहणा जी ने आदेश पाते ही दीवार की चिनाई तुरन्त आरम्भ कर दी। यह देखकर गुरुदेव अति प्रसन्न हुए।

उन्होंने संगत के आने पर प्रवचन देते हुए कहा - ''सिक्ख वही है जो कि विपत्ति काल में भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संघर्षरत रहता है, वह इस बात की विचार नहीं करता कि परीश्रम व्यर्थ जा रहा है अथवा फलीभूत हो रहा है। उस का उद्देश्य केवल अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदैव कार्यरत रहना है भले ही परिस्थितियां कितनी भी विषम क्यों न हों ?''

संगत को सन्तुष्ट किया

श्री गुरू नानक देव जी के दरबार में हाज़री भरने दूर-दूर से संगत आई हुई थी। भीषण गर्मी के पश्चात् वर्षा ;तु प्रारम्भ हो गई। मूसला धार वर्षा होने के कारण लंगर तैयार नहीं किया जा सका। अतः संगत को रात भर बिना भोजन रहना पड़ा। जब सूर्योदय हुआ, वर्षा रुकी तो भोजन की व्यवस्था होने लगी किन्तु इस कार्य में समय लगना था। गुरुदेव ने अपने बड़े बेटे को आदेश दिया, ''बेटा श्री चन्द, संगत भोजन के बिना भूखी है। कुछ मिठाई अथवा फलों का प्रबन्ध करो जिस से संगत को अल्प-आहार मिल जाए।'' यह आदेश सुनकर श्री चन्द जी कहने लगे, ''पिता जी ऐसी विषम परिस्थिति में मिठाई अथवा फल कहाँ से उपलब्ध होंगे, जो कि संगत के लिए पर्याप्त हों ?'' यह उत्तर सुनकर पुनः इस आदेश को छोटे बेटे लक्ख्मी दास को दिया। वह भी बात को सुनी अनसुनी कर टाल गए। इस पर गुरुदेव ने निकट वर्ती सेवकों को बुला कर आदेश दिया, ''बेटा कुछ करो संगत भूखी है, कहीं से मिठाई अथवा फल लाओ। जिस से संगत को अल्प-आहार मिल जाए। तब तक भोजन तैयार हो जाऐगा।'' अन्य सेवक विचार करने लगे कि अब ऐसी वस्तुएं कहाँ से लाएं। किन्तु भाई लहणा जी तुरन्त सामने वाले आम के विशाल वृक्ष पर चढ़ने लगे, उन्हें दूसरे सेवकों ने रोका कि वह आम आचारी हैं अच्छी नस्ल के न होने के कारण खट्टे हैं। इन से कुछ नहीं होगा किन्तु भाई लहणा जी ने देखते ही देखते वृक्ष की डालियों को जोर से झंझोड़ा तो पक्के हुए आमों की तेजी से वर्षा होने लगी। संगत ने जिन्हें चूस कर अपनी भूख मिटाई और कहने लगी, ''धन्य है भाई लहणा जी।'' परन्तु भाई लहणा जी कहने लगे - ''धन्य है ! सत्यकरतार !!!''

विशिष्टि शिष्यों का प्रशिक्षण

श्री गुरू नानक देव जी के दरबार में भक्तजनों का आवागमन निरन्तर बना रहता। कुछ सेवक स्थाई रूप से उनके पास सेवारत थे, जिन में से कुछ युवक बहुत प्रतिभाशाली थे। गुरुदेव की अपनी आयु भी अब 63 वर्ष के निकट थी। एक दिन उन्होंने अपने स्थायी रूप में निकट रहने वाले शिष्यों को सम्बोधन हो कर कहा, ''मेरा शरीर भी अब वृद्ध अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है। शरीर का कोई भरोसा नहीं न जाने कब साथ देना छोड़ दे। अतः मैं चाहता हूँ कि जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, मैंने जीवन भर कार्य किया है तथा देश देशान्तरों में घूमा हूँ उसी कार्य को आप सब मिलकर उसी लग्न तथा निष्ठा से आगे बढ़ाते चले जाएं, क्योंकि यह कार्य बहुत बड़ा है। मेरे जीवन में तो कदाचित सम्पूर्ण हो ही नहीं सकता अतः उस के लिए आप सब को कई पीढ़िओं तक इसी प्रकार सक्रिय बना रहना होगा।''

''मेरा मुख्य उद्देश्य था, 'मानव कल्याण' अर्थात कोटि-कोटि जन-मानस की सम्पूर्ण रूप मे स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता से मेरा तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति हर दृष्टि से पूर्ण रूप से आत्म निर्भर होना चाहिए, यानी यह कि केवल राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होना प्रर्याप्त नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से भी प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी होना अति आवश्यक है। यह कार्य असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। इस के लिए सामाजिक चेतना लानी है, जो कि लम्बे समय के संघर्ष के पश्चात् कहीं सम्भव होगी। क्योंकि स्वार्थी लोग इन कार्यो

में अड़चने डालेंगे, जिस कारण उन से मतभेद उत्पन्न होगा। यही मतभेद कहीं-कहीं प्रतिशोध में भी बदल सकता है। हमारे प्रतिद्वन्दी हमें मिटा डालने के कार्यक्रम बनाकर उस पर योजनाबद्ध कार्य करेंगे। जिस से हम सामाजिक क्रांतिकारियों को भारी क्षति उठानी पड़ सकती है। इस लिए हमें पूर्ण सतर्कता से युक्ति संगत नियमावली से समाज मे जागृति लानी है और संगठित होकर सदैव संघर्ष-रत रहना है। इन कार्यो के लिए प्राणों की आहुति भी देनी पड़ सकती है। जिस के लिए हमें अपने मन को सदैव तैयार रखना है।''

''लक्ष्य की प्राप्ति तभी सम्भव हो सकती है जब आप स्वयं सशक्त हो, तात्पर्य यह कि सब से पहले 'मानव कल्याण' के लिए स्वयं को प्रत्येक दृष्टि से शक्तिशाली बनाकर, शक्ति का प्रयोग, शक्ति सन्तुलन बनाए रखने के लिए करें। क्योंकि प्रकृति का यही सिद्धांत है दुर्बल को बलवान मार डालता है अथवा खा जाता है। जब तक आप के पास शक्ति नहीं रहेगी। आप की आदर्श बातों अथवा कार्यों का कोई मूल्य नहीं क्योंकि विरोधी पक्ष आप के कार्यो के लिए सदैवबाधाएं उत्पन्न कर आप को पराजित करना चाहेगा। अत: सर्व प्रथम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन के रूप में शक्ति प्राप्त करना अनिवार्य है।''

शक्ति के आठ स्वरूप हैं - ''आज तक कई पराक्रमी पुरुष अथवा चक्रवती सम्राट, इन्हीं आठों शक्तियों को प्राप्ति कर जगत में महान कहलाये हैं- शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, धन, जन, शस्त्र, पदवी, एकता इत्यादि।''

1. **शारीरिक** – यह शक्ति लक्ष्य का मूल स्रोत है, इस की प्राप्ति के लिए पौष्टिक आहार का सेवन सदैव करना, नशे, चिन्ताओं से दूर रहना तथा कसरत इत्यादि करना अनिवार्य है।
2. **मानसिक शक्ति** – इस शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षित होना अनिवार्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मातृ भाषा को साधन बनाना चाहिए।
3. **आत्मिक शक्ति** – यह शक्तियों का मूल स्रोत है, इस शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रात:काल शौच-स्नान से निवृत होकर सहज योग से मन एकाग्र कर हरि नाम का चिंतन मनन करना चाहिए।
4. **धन की शक्ति** – इस शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पुरुषार्थी बन कर, सत्य मार्ग पर चलकर, अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करनी चाहिए।
5. **पदवी (उपाधि) की शक्ति** – इस शक्ति की प्राप्ति के लिए सक्रिय राजनीति में भाग लेकर अथवा योग्यता के बल पर सत्ता अथवा उच्च पद्वी प्राप्त करनी चाहिए। जिस से मानव कल्याण कर सकें।
6. **शस्त्र अस्त्र शक्ति** – प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुरक्षा के लिए समय अनुसार आधुनिक अस्त्र-शस्त्र धारण कर के आत्म निर्भर बनना चाहिए।
7. **जन शक्ति** – गुरुमति विचारधारा का प्रचार कर अपने अनुयायियों की संख्या को सदैव बढ़ाना ही मुख्य लक्ष्य होना चाहिए।
8. **एकता की शक्ति** – आपसी मतभेदों को सदैव भुलाकर, संस्थाओं के रूप में संगठित होकर रहना चाहिए।

उपरोक्त आठों शक्तियों की प्राप्ति का प्रयास ही सम्पूर्ण स्वतन्त्रता है अथवा 'मानव कल्याण' का पहला कदम है। ऐसा सम्भव हो गया तो समस्त विश्व मे दुख-क्लेश का नाश हो जायेगा तथा सदैव के लिए शान्ति स्थापित हो जायेगी। यदि इन प्राप्त शक्तियों के सदुपयोग द्वारा पीड़ित वर्ग के उत्थान के लिए, क्रमश: चार भागों में कार्यक्रम चलाएंगे तो सब ठीक होगा।

1. **सामाजिक वर्गीकरण के विरुद्ध** – तथा कथित अछूत जातियों को समानता का अधिकार दिलवाने के लिए, उन्हें अपनी तरफ से प्रेम-प्यार अथवा सत्कार से सामान्य जीवन जीने के लिए साधन जुटा कर देना।
2. **आर्थिक शोषण** – धनी वर्ग की आत्मा को झंझोड़ना अथवा शोषित वर्ग के अधिकारों के लिए उन के पक्षधर बनकर न्याय के लिए दुहाई देना।
3. **धार्मिक मतभेद** – धर्म के नाम पर घृणा न कर परस्पर प्रेम प्यार से सब के साथ व्यवहार करना। निरर्थक भ्रमों, पारवण्डों के विरुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आंदोलन चलाना, जिस से पीड़ित समाज को बराबर का जीवन अधिकार मिल सके।
4. **राजनैतिक** – दुष्ट तथा स्वार्थी शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध जन-आंदोलन लाने के लिए, जागृति लाना अथवा सत्ता को किसी आदर्शवादी मनुष्य के हाथों सौंपना।

राजे सीह मुकदम कुत्ते ॥
जाइ जगाइनि: बैठे सुते ॥ *राग मलार, पृष्ठ 1288*

उत्तराधिकारी के लिए परीक्षण

श्री गुरू नानक देव जी अपने मुख्य उद्देश्य 'मानव कल्याण' की सम्पूर्णता के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम चला रहे थे। अब उन का ध्येय था कि उन के पश्चात् अपना यह कार्य किसी योग्य, निष्ठावान, सम्पूर्ण-समर्पित व्यक्ति के हाथों सौंपा जाए। जिस से लक्ष्य की प्राप्ति में समय

के साथ-साथ कोई बाधा उत्पन्न न हो। यदि कोई बाधा उत्पन्न होती है तो योग्य उत्तराधिकारी बुद्धी तथा धैर्य से उस का समाधान कर सिक्खों का मार्ग दर्शन करने में सक्षम हो। जिस से यह प्रवाह निरन्तर गतिशील होकर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे और लक्ष्य की प्राप्ति में चूक की सम्भावना उत्पन्न न हो। इस लिए आप जी ने इस कार्य के लिए अपने पुत्रों एवं सेवकों को कसौटी पर परख कर उचित निर्णय लेने का विचार बनाया।

आप जी एक दिन अपने सेवकों एवं पुत्रों के साथ करतार पुर में विचरण कर रहे थे। उस समय आप के हाथ में एक सुन्दर लोटा था। अकस्मात ही वह लोटा आप के हाथ से छूट गया और वह लुढ़कता हुआ दुर्गन्ध एवं गंदे कीचड़ से भरे एक गड्डे में चला गया। आप जी वहीं रुक गये और अपने बड़े लड़के बाबा श्री चन्द जी को आदेश दिया, ''बेटा ! वह लोटा निकाल कर ले आओ।'' पिता जी का आदेश पा कर श्री चन्द जी दुविधा में फंस गए और विचार करने लगे क्या करूं, कीमती वस्त्र बदबू एवं गंदे कीचड़ से लिप्त हो जायेंगे जब कि यह एक नगण्य लोटा ही तो है। इस के लिए परेशान होने की क्या आवश्यकता है। अत: उन्होंने उत्तर दिया - ''पिता जी ! आप भी कैसी बातें करते हैं ? यह एक साधारण सा लोटा ही तो है, और दूसरा आ जायेगा। उसके लिए मैं अपने वस्त्र क्यों खराब करूं।'' गुरूदेव जी उसी क्षण छोटे बेटे बाबा लक्खमी दास को संकेत किया कि वह जाए और लोटा निकाल लाए। अब लक्खमी दास भी सोचने लगे कि बड़े भाई की बात तो ठीक ही है। इस लोटे के स्थान पर दूसरा लोटा आ जायेगा। उन्होंने भी तुरन्त उत्तर दिया - ''पिता जी ! बड़े भैया जी ठीक ही कह रहे हैं। दूसरा लोटा आप को अभी मंगवा देते हैं।'' इस उत्तर को सुनकर गुरुदेव ने भाई बूढ़ा जी को आदेश दिया, ''बेटे! लोटा निकाल लाओ।'' उन्होंने उत्तर दिया, ''गुरुदेव! आप आश्रम चलें मैं किसी सफाई कर्मचारी से लोटा निकलवा कर लाता हूँ।'' इस पर गुरुदेव ने भाई लहणा जी को संकेत किया। वह तुरन्त गड्ढे में उतर गए और लोटा निकाल लाए और नदी के जल से स्वच्छ कर गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। गुरुदेव ने उन्हें हृदय से लगाया और सब को सम्बोधित हो कर के कहा, ''बात लोटे की नहीं थी। बात तो आज्ञा पालन की थी, जिस में एक विशेष रहस्य छिपा पड़ा था कि समर्पित सिक्ख को, भविष्य में निम्न वर्ग के उद्धार के लिए, उन की गंदी बस्तियों में जाकर, उन जैसा जीवन जीना पड़ सकता है। जो व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ समझता है यह कार्य उस के बस का है ही नहीं।''

अन्तिम परीक्षा

श्री गुरू नानक देव जी की आयु जब 70 वर्ष के लगभग हुई तो उन्होंने अपने उत्तराधिकारी का चुनाव करने के प्रयोजन से सभी सेवकों तथा पुत्रों की परीक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी। उन्होंने समय-समय पर सेवकों एव पुत्रों को कसौटी पर परखना शुरू कर दिया। अत: एक दिन उन्होंने अपने उत्तराधिकारी की अन्तिम और कड़ी परीक्षा लेने का मन बना कर एक योजना बनाई और बड़ी सतर्कता से व्यवहारिक रूप दिया, ताकि परीक्षार्थियों को सन्देह न होने पाये कि उन की परीक्षा ली जा रही है।

सब से पहले उन्होंने नगर के शमशान घाट पर एक बड़ी कढ़ाई मे हलुवा तैयार कर के उस कढ़ाई के चारों ओर लकड़ियां चिन दी जिस से कढ़ाई दिखाई न दे। कढ़ाई पर दो लम्बे बांस तथा घास-फूस इस अन्दाज से जोड़ा कि वह चदर ढकने पर शव दिखाई दे और घर लौट कर अपनी वेष भूषा वैरागियों वाली धारण कर ली। जब दिन चर्या के अनुसार दरबार सजने का समय हुआ तो संगत के उपस्थित होने पर गले मे चांदी के सिक्कों की थैलियां लटकाए एक हाथ मे मोटा सा लट्‌ठ तथा दूसरे हाथ मे कुत्ते की रस्सी पकड़ कर बिना कुछ बताए नगर के बाहर शमशान घाट की तरफ चल दिये। संगत तथा प्रमुख सेवकों ने पूछा गुरुदेव आप कहाँ जा रहे हैं? आज आप ने यह क्या रूप धारण कर रखा है ? इत्यादि - परन्तु गुरुदेव ने किसी की बात का कोई भी उत्तर नहीं दिया। इस पर सभी संगत उन के पीछे-पीछे हो गई। किन्तु गुरुदेव ने उन्हें डांट कर भगा दिया। कुछ सेवक तो अडिग थे वह नहीं गए, तब गुरुदेव ने उन के लिए चांदी, सोने के सिक्कों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। अधिकांश लोग सिक्कों को लूट कर वापस घर को चले गए। किन्तु मुख्य सेवक और सपुत्र तो अभी भी शेष थे। अब गुरुदेव ने कुत्ते को खुला छोड़ दिया जिस के भौंकने पर उस के काटने के भय से बाकी के सेवक तथा पुत्र घर लौट आए और सोचने लगे न जाने गुरुदेव को आज क्या हो गया है? कहीं मानसिक सन्तुलन तो नहीं खो बैठे। अब शेष दो ही सेवक थे। भाई बुड़ढा जी तथा भाई लहणा जी, गुरुदेव ने इन को भाग जाने को कहा और पीछे आने पर लट्‌ठ से पीटने लगे। बुड्‌ढा जी तो एक लट्‌ठ खा कर वहीं रुक गए किन्तु भाई लहणा जी पीटे जाने के बाद भी पीछा करते रहे। इस पर गुरुदेव ने उनको डांटते हुए पूछा, ''लहणे तुम क्यों पिट रहे हो भागे क्यों नहीं?'' उत्तर में भाई लहणा जी ने हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक उत्तर दिया, ''मैं कहाँ जाऊं मेरा तो कोई ठिकाना नहीं है।'' यह सुनते ही गुरुदेव ने उन्हें पकड़ कर कहा, ''तो ठीक है यदि हमारे साथ रहना चाहते हो तो यह मुर्दा खाओ।'' भाई लहणा जी ने कहा, ''सत वचन'' और पूछा, ''किधर से इसे खाऊँ।'' गुरुदेव ने कहा, ''बीच में से खाओ।'' जब भाई लहणा जी ने चादर उठाई तो वहाँ मुर्दा तो था नहीं, वहाँ तो योजना अनुसार कड़ाह प्रसाद (हलुवा) तैयार रखा था जो कि लहणा जी ने आदेश अनुसार खूब डट कर खाया। गुरुदेव भाई लहणा जी पर अति कृपालु हुए और कहने लगे, ''लहणेया तेरे लिए कोई और ठिकाना नहीं है ना। बस मेरे को भी कोई और ठिकाना नहीं मिल रहा था कि मैं अपनी ज्योति कहाँ टिकाऊं। अत: अब मुझे अपनी ज्योति के लिए उपयुक्त ठिकाना मिल गया है।'' यह कह कर उन्होंने भाई लहणा जी को हृदय से लगा लिया और आशीष दी और वचन किया, ''आज से तेरा पुर्न जन्म हुआ। तू मेरे अंग से उत्पन्न है। इस लिए तेरा नाम लहणा के स्थान पर अंगद हुआ। अब तुझ में मुझ में कोई अन्तर नहीं तू मुझ में अभेद है।''

उत्तराधिकारी की घोषणा

श्री गुरू नानक देव जी ने दृढ़ निश्चय कर संगत को दूर-दूर संदेश भेजे कि वे अपने उत्तराधिकारी की विधिवत घोषणा करने जा रहे हैं। अतः सभी लोग निश्चित समय पर उपस्थित हों।

निश्चित समय पर सभी तरफ से संगत एकत्रित होने पर आप जी ने भाई लहणा जी को अपने निजि-आसन (गुरू आसन) पर बिठाकर पांच बार परिक्रमा की और पांच पैसे, नारियल भेंट किया और बाबा बुड्‌ढा जी ने उन के माथे पर केसर का तिलक लगाया। तत्पश्चात् गुरुदेव जी ने स्वयं दन्डवत प्रणाम कर भाई लहणा जी (अब अंगद देव जी) को अपना गुरू स्वीकार कर, घोषणा की कि आज से गुरू-पदवी भाई लहणा को (अपना निजि स्वरूप देकर) गुरू अंगद देव के रूप में सौंप रहा हूँ। अतः आप सभी संगत भी शीश झुका कर नम्रता पूर्वक प्रणाम करें अथवा मस्तक झुका कर अभिनंदन करें। गुरुदेव जी ने उस समय गुरू-शिष्य के नाते को बदलकर एक नई परम्परा की आधारशिला रखी, जिस के अनुसार शिष्य को गुरू बनाकर और स्वयं शिष्य बन कर शीश झुका दिया। परिवार के सदस्य तथा संगत यह सब देखकर बहुत चकित हुई किन्तु गुरुदेव ने तो दीपक से दीपक जला कर उसे प्रकाशमान कर दिया था तथा साथ में अपनी समस्त पूंजी-वाणी की पोथी ('शब्द गुरू') जिस की उन्होंने अपने प्रचार दौरों के समय घटना क्रम के अनुसार रचना की थी। उसे अपने इस परम भक्त शिष्य को सौंप दी, जो कि अब गुरू-ज्योति प्राप्त कर चुके थे।

गुरुदेव ने आदेश दिया, ''आज से मेरे स्थान पर अंगद देव जी गुरू कहलवाएंगे। गुरू अंगद देव जी को गुरू गद्‌दी पर बैठाने का शुभ कार्य दिनांक 2 सितम्बर, 1539 को सम्पूर्ण हुआ। किन्तु अंगद देव जी यह सब सहन नहीं कर पाए कि गुरुदेव जी, उन के कदमों पर शीश झुकाएं। उन्होंने सहज में ही अपने पैरों को शाप दे दिया और कहा, ''इन पैरों पर कुष्ठ हो जाए।'' किन्तु गुरुदेव ने उन्हें शान्त किया और कहा, ''प्रभु की यही इच्छा है। अतः ऐसा होना ही था, क्योंकि आप की सेवा-भक्ति रंग लाई है।'' परन्तु अंगद देव जी का वचन पूरा हुआ। उन के अपने पांव पर कुष्ठ रोग हो गया। यह देखकर गुरू नानक देव जी ने अपने हाथों से उन के चरण धो डाले और कहा, ''इस कुष्ठ का रोग चिन्ह मात्र तो रहेगा ही, क्योंकि भक्त का वचन अटल होता है।'' इस प्रकार गुरू अंगद देव जी के चरणों की एक उंगली पर जीवनभर कुष्ठ बना रहा।

गुरुदेव के अपने दोनों साहबजादों ने उन के आदेशानुसार अंगद देव जी को गुरू मानकर शीश झुकाना स्वीकार न किया। जिस कारण गुरुदेव उन से रुष्ठ हो गए। गुरुदेव ने महसूस किया कि अंगद देव जी के वहाँ रहने पर दोनों भाई उन से ईर्ष्या करेंगे। अतः उन्होंने अंगद देव जी को बुलाकर उन को वापिस खडूर (साहब) नगर जाने का आदेश दिया और कहा, ''वहीं रह कर गुरू पद्‌वी धारण कर गुरमति का प्रचार आरम्भ करो।'' गुरू अंगद जी ने आज्ञा का पालन तुरन्त करते हुए करतार पुर नगर को छोड़ दिया और खडूर (साहब) नगर पहुँच कर साधना मे लीन हो गए।

परम ज्योति में विलय

श्री गुरू नानक देव जी ने श्री गुरू अंगद देव जी को गुरू पदवी सौंप कर उन को विदा किया। उस के उपरान्त उन्होंने आसन लगाकर संगत को कृतार्थ करना त्याग दिया। जो भी उनके दर्शनों को आता आप जी उन्हें खडूर नगर जाने के लिए प्रोत्साहित करते। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गए। एक दिन आप जी ने समस्त संगत तथा निकटवर्तीयों को संदेश भेजा कि इस नश्वर शरीर को त्याग कर वे निजधाम को प्रस्थान करने जा रहे हैं। आप सब से अब अन्तिम विदाई लेनी है, इस लिए आप सब समय अनुसार दर्शन देकर कृतार्थ करें। इस संदेश को प्राप्त करते ही सभी लोग गुरुदेव से मिलने आये, परन्तु उन से रूठे हुए उनके दोनों पुत्र नहीं आए। इस पर उन्होंने एक बार उन को विशेष रूप से संदेश भेजा कि उन दोनों को पिता जी याद कर रहे हैं और उन का कहना है कि यदि आप दोनों न आए तो भी वे शरीर त्याग देंगे। किन्तु श्री चन्द तथा लक्खमी दास ने इस बात को भी पिता जी का विनोद ही समझा। क्योंकि वे जानते थे कि गुरुदेव का स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होगा। इसलिए वे नहीं आए। गुरुदेव ने सभी को प्रभु लीला में प्रसन्न रहने का आदेश दिया और कहा, ''धैर्य ही सब से बड़ी शक्ति है।'' और अपने पुत्रों की प्रतीक्षा किए बिना ही आप जी चादर तान कर सो गए।

गुरुदेव के सच्चखंड प्रस्थान का समाचार जब बाबा श्री चन्द और बाबा लक्खमी दास जी को मिला तो वे जल्दी से आए और गुरुदेव के समक्ष प्रार्थना करने लगे कि उन से भूल हुई है। उनको क्षमा करें तथा कम से कम दो घड़ी के लिए दर्शन देकर कृतार्थ करें। साहबजादों की ऐसी प्रार्थना सुनते ही गुरुदेव पुनः उठ बैठे और उनसे विचार-विमर्श करने लगे। बाबा लक्खमी दास जी ने मुख्य बात पूछी, ''गुरुदेव के रहते सिक्खी-सेवकी बहुत चलती थी। सिक्खी का कार्यभार तो अब अंगद देव जी को सौंप दिया है। ऐसे में उनका क्या होगा ?'' श्री गुरू नानक देव जी ने उत्तर में कहा, ''आप किसी बात की चिन्ता न करें। यदि आप लोग प्रभु चिंतन मे लीन रहोगे तो किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रहेगी।''

इस मुलाकात के पश्चात् गुरुदेव जी फिर चादर तान कर सो गए। जब फिर जांचा गया तो आप जी इस बार शरीर का त्याग कर चुके थे।

शोक सभा का आयोजन किया गया। नगर के प्रमुख नागरिक उपस्थित हुए। कुछ विवेकशील व्यक्तियों ने गुरुदेव की अन्तिम इच्छा तथा आदेश जानने चाहे कि उनका पार्थिव शरीर किस विधि अनुसार प्रकृति में विलय किया जाए। क्योंकि गुरुदेव जी पुरोहित वर्ग के कर्म काण्डों पर विश्वास नहीं रखते थे। परन्तु उन्होंने इस विषय पर कोई वसीयत भी न की थी न ही किसी को इस विषय पर उन से पूछने का कभी साहस हुआ था। उन दिनों भी अन्तिम संस्कार के लिए दो विधियों का प्रचलन था। एक वैदिक रीति से अन्तेष्टि तथा दूसरी मुसलमानी शरहा अनुसार दफन करना। किन्तु गुरुदेव ने तो समस्त जीवन इन दोनों प्रणालियों से ऊपर उठकर निर्पेक्ष जीवन जिया था। उन का नारा था 'न हम हिन्दू न मुस्लमान' अर्थात मैं परम ज्योति का सेवक, एक इन्सान मात्र हूँ। इसी लिए उन्होंने बाल्यकाल में जनेऊ भी धारण करने से साफ़ इनकार कर दिया था क्योंकि उन का मत था कि उस को धारण करने से समाज में जाति, वर्ण भेद के नाम पर बुराइयां उत्पन्न होती है तथा बहन-भाई में भी नारी पुरुष के नाम पर मतभेद उत्पन किये जाते हैं। जबकि दोनों को समाज में बारबर के अधिकार मिलने चाहिए। आप जी ने अपने समस्त जीवन काल में जहां हिन्दू समुदाय के कर्मकांडों, आडम्बरों तथा पाखण्डों का विरोध किया वहां इस्लाम की रूढ़िवादी विचारधारा का भी कड़े शब्दों में खण्डन किया। अत: उन्होंने मानव समाज का नये रूप में पथ प्रदर्शित किया। कुछ लोगों ने प्रस्ताव रखा कि गुरुदेव जी की राय जानने के लिए उन की बाणी से सीख ली जाए। इस पर प्रमुख सेवकों ने उन की बाणी के कुछ विशेष शब्द जो कि मृतक संस्कार के लिए थे, जिन में जन साधारण के लिए सुन्दर संदेश था प्रस्तुत किये -

मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुमिःआर ।।
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ।।
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ।।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ।।
राग आसा, पृष्ठ 466

इक दझहि इक दबीअहि इकना कुते खाहि ।।
इकि पाणी विचि उसटीअहि इकि भी फिरि हसणि पाहि ।।
नानक एव न जापई किथै जाइ समाहि ।।

राग सोरठि, पृष्ठ 648

इस रचना को सुनकर सभी ने एक मत होकर कहा कि गुरुदेव की इच्छा अनुसार परम्परा से ऊपर उठकर कोई नई विधि अनुसार बिना कर्मकाण्ड के उनका अन्तिम संस्कार कर दिया जाए।

इस पर गुरुदेव का शरीर जल प्रवाह कर दिया गया। जिस से उन की इच्छा अनुसार उनकी कोई समाधि अथवा यादगार न तैयार की जा सके।

गुरुदेव जी बनारस में जब कबीर पन्थियों से मिले थे तो आप ने उन की वाणी को अपनी पोथी में संकलित कर लिया था, जो कि उन की अपनी विचार धारा के अनुरूप थी, अपनी पोथी में संकलित कर लिया था। जिस का एक शब्द इस प्रकार है -

बुत पूजि पूजि हिंदू मूए तुरक मूए सिरु नाई ।।
ओइ ले जारे ओइ ले गाडे तेरी गति दुहू न पाई ।।

राग सोरठि, पृष्ठ 654 ***– कबीर जी***

गुरूदेव का गुप्तवास

भाई लहणा जी गुरू अंगद रूप धारण करके दूसरे गुरू नानक बन गये परन्तु उनका हृदय किसी भी फल की इच्छा नहीं रखता था। वह तो केवल प्रभु चरणों में लीन रहना चाहते थे। अत: वह गुरूदेव का आदेश पाते ही उन की इच्छा अनुसार उनकी प्रसन्नता के लिए अपने नगर खडूर लौट गये। खडूर पहुँच कर वह सीधो अपनी बुआ विराई जी के यहाँ पहुँचे और उन से अनुरोध ा किया कि मुझे एकांत वास के लिए एक कमरा चाहिए और मेरे यहाँ पर होने का किसी को भेद न दिया जाये। यहाँ तक कि मेरे परिवार को भी, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरी बन्दगी में कोई बाधा ना डाल सके। बुआ विराई जी ने उनको आश्वासन दिया कि ऐसा ही होगा। इस प्रकार बुआ विराई जी के यहाँ गुरू अंगद देव जी अपनी इच्छा अनुसार साधना में लीन हो गये। उधार

करतारपुर में गुरू नानक देव जी ने उचित समय देखकर शरीर त्याग दिया और परमज्योति में विलीन हो गये। जब यह समाचार दूर-दराज़ नगरों में फैला कि गुरू नानक देव जी ज्योति-ज्योत (देहावसान) समा चुके हैं तो संगत उनके उत्तराधिकारी के दर्शनों को उमड़ पड़ी परन्तु करतारपुर में आने पर मालूम होता कि उनके उत्तराधिकारी वास्तव में उनके सेवक भाई लहणा जी हैं, उनके पुत्र नहीं, जिनको गुरू नानक देव जी ने अंगद देव नाम देकर खडूर नगर भेज दिया। अत: संगत नये गुरू की तलाश में खडूर नगर पहुँच जाती परन्तु वहाँ से उनको निराश होना पड़ता क्योंकि गुरू नानक की नई मूर्ति गुरू अंगद देव कहीं दिखाई न पड़ते। बुआ विराई जी अपने दिये गये आश्वासन पर पूरी तरह पहरा देती। इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये। संगत व्याकुल हो उठी। वे कोई युक्ति सोचने लगे कि गुरू अंगद देव जी को किस प्रकार और कहाँ ढूँढा जाए। अन्त में कुछ श्रद्धालु भक्तजनों ने बाबा बुड्डा जी से विनती की कि आप गुरू अंगद देव जी को खोजने में हमारा मार्ग दर्शन करें। बाबा बुड्डा जी संगत को लेकर खडूर नगर पहुँचे वहाँ उन्होंने युक्ति से काम लिया। अत: गुरू घर के कीर्तनीये भाई बलवन्डा को कीर्तन करने को कहा और संगत उनके साथ कीर्तन करते हुए खडूर नगर की गलियों में घूमने लगी। इस प्रकार कीर्तन करते हुए जब संगत बुआ विराई जी के मकान के आगे से गुजरने लगे तो कीर्तन की मधुर ध्वनि सुनकर गुरू अंगद देव जी समाधी में न रह सके वह तुरन्त शब्द के रसास्वादन के लिए बाहर निकल आए। बस फिर क्या था, संगत ने उनके चरणों में प्रार्थना की कि आप प्रकट होकर संगत को दर्शन देकर कृतार्थ करें और गुरू नानक देव के पंथ का पुन: प्रचार-प्रसार प्रारम्भ करें ताकि जगत उद्धार हो सके। गुरू अंगद देव जी ने तुरन्त संगत का अनुरोध स्वीकार कर लिया और वहाँ संगत के विश्राम तथा लंगर की व्यवस्था के लिए दीर्घ कालीन योजना तैयार करने का आदेश दिया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बाबा बुड्डा जी ने कुछ स्थानीय सज्जनों को विश्वास में लेकर एक धर्मशाला का निर्माण खडूर नगर के बीचों-बीच रिक्त स्थान देखकर प्रारम्भ कर दिया। जनता के उत्साह ने कुछ दिनों में ही प्राथमिक कार्य खत्म कर लिया। लंगर में भोजन तैयार करवाने की व्यवस्था गुरूदेव जी के महल, माता खीवी जी ने सम्भाली, वह अपनी देखरेख में स्वादिष्ट भोजन तैयार करने का प्रयास करने लगे।

गुरूदेव के प्रकट होने पर बहुत दिनों के वियोग के वियोग पश्चात गुरू के महल खीवी जी हृदय में दर्शनों की तड़प लेकर उपस्थित हुई। उन्होंने गुरूदेव से गिला शिकवा किया कि आपने मुझे बहुत दिनों तक सेवा से वंचित रखा है। वह बुआ विराई जी से रूठ गई और बोली कि आपके पास मेरे पति लम्बे समय से रह रहे हैं, आपने यह रहस्य मुझ से क्यों छिपाकर रखा। इस पर बुआ जी ने उत्तर दिया, ''मुझे ऐसा ही आदेश था। इसी में सब की भलाई थी क्योंकि दुनियादारी के झमेले साधना में बाधा डाल सकते थे। अत: समय आने पर सब कुछ सामान्य होना ही था, सो हो गया है।

जीवन चर्या

गुरूदेव के प्रकट होने का समाचार फैलते ही संगत दूर-दराज से उमड़ पड़ी, अत: खडूर नगर में सदैव भीड़ रहने लगी। इस लिए कुछ व्यापारियों ने वहाँ पर दुकाने खोल ली जिस से नगर की आबादी धीर-धीरे बढ़ने लगी। गुरूदेव अर्धरात्री को स्नान करके प्रभु चरणों में एकागर होकर बैठ जाते। सूर्योदय होने पर ही चिन्तन-मनन से उठकर धर्मशाला में पहुँचकर संगत में बिराज-कर भाई बलवन्डा जी से कीर्तन श्रवण करते। कीर्तन के पश्चात संगत में जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान करते हुए आध्यात्मिक चर्चा करते। चर्चा का मुख्य विषय गुरू नानक देव जी द्वारा प्रचारित उनके तीन मुख्य सिद्धान्त होते - किरत करो, नाम जपो, वंड छको। गुरूदेव इसी लिए अपनी जीविका के लिए स्वयं भी पुरूषार्थ करके अपने निर्वाह के लिए श्रम करने लग जाते। इसमें अधिकांश बाण की रस्सी बट कर कुछ धान अर्जित करते जिस से उनके लिए भोजन की व्यवस्था हो सके। भले ही आप भोजन लंगर रूप में संगत के साथ संयुक्त रूप में करते थे। अत: आप यह धनराशी लंगर कोष में डाल देते थे। जीविका के कार्यो से अवकाश पाते ही आप बच्चों को इकट्ठा करके उनको गुरू नानक जी द्वारा निर्मित नई वर्णमाला (गुरूमुखी लिपी) सिखाने का कार्य प्रारम्भ कर देते। मध्यान्तर में भोजन के पश्चात कुछ समय विश्राम करके युवकों को एकत्रित करके अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने की प्रेरणा देते, तद्पश्चात अखाड़े में योद्धाओं का मल्ल युद्ध देखते जिसमें आपका मुख्य लक्ष्य युवकों को कसरत करवाना होता था। गुरू आज्ञानुसार आपका उद्देश्य अपने अनुयाईयों मे वीरता लाना, आत्म-निर्भर बनना तथा निर्भीक बनाना होता था। क्योंकि आप जानते थे कि शक्तिशाली मनुष्य ही स्वतंत्र रह सकता है। दुर्बलता पराधीनता की जननी है। अत: आपने संगत के आग्रह पर गुरू नानक देव जी की क्रांतिकारी विचारधारा को आगे बढ़ाने का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर प्रारम्भ कर दिया। जिस के अंतर्गत सिखों को नये रूप में संगठित करके प्रशिक्षित करना मुख्य कार्य था। वास्तव में आप की दृष्टि में प्रत्येक सिख को हर प्रकार से बलशाली एवं सम्पन्न-समृद्ध होना चाहिए। जिस से वे पीड़ित एवं दलित वर्ग के उत्थान का कार्य आरम्भ किया जा सके। अत: आपने शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक बल प्राप्ति के लिए जन-साधारण में जागृति लाने के लिए

आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। इस कार्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए विभिन्न स्थानों पर पाठशालाएं बनवाई। जिन में अपनी मातृभाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सके। शिक्षा के माध्यम के रूप में गुरूमुखी लिपी को प्रयोग में लाया गया। इसके साथ ही मल्ल युद्ध सिखाने के लिए कई अखाड़े भी बनवाये। जिससे नव-युवकों को सदैव स्वस्थ रहने की प्रेरणा दी जा सके। इस प्रकार आत्म-निर्भर समाज की सृजना करने के लिए आपने अपने गुरू भाई बुड्डा जी को खेल-खेल में युवा पीढ़ी को शस्त्र विद्या देने का आदेश दिया जिससे प्रतियोगितात्मक भावना उत्पन्न हो सके।

गुरू अंगद देव जी ने गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई लंगर प्रथा को और भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जिससे उनके उपदेशों को दृढ़ करवाकर जाति-पाति के भेदभाव सदा के लिए मिलकर एक स्वस्थ समाज की सृजना की जाए। इस कार्य के लिए आपने स्वयं की रचित वाणी द्वारा पुन: जोरदार शब्दों में वर्ण-आश्रम का खन्डन करना प्रारम्भ कर दिया।

आप (अर्धरात्री) सातवें पहर की समाप्ति पर बिस्तर त्याग कर शौच-स्नान से निवृत होकर प्रभु चरणों में ध्यानास्त होकर बैठ जाते। सूर्योदय हाने पर ही आसन से उठते और सीधो धर्मशाला में पहुँचकर संगतों को दर्शन देकर कृतार्थ करते तब जिज्ञासुओं के अन्तर-मन में उत्पन्न शंकाओं का समाधान अपने प्रवचनों द्वारा करते। तद्पश्चात भाई मरदाना के बड़े सुपुत्र सहजादा जी से शब्द कीर्तन का श्रवण करते।

'श्री गुरू नानक देव जी का जीवन वृत्तांत लिखवाना'

श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी, दूसरे गुरुदेव श्री गुरू अंगद देव जी एक दिन अपने परममित्र एवं गुरू भाई, बाबा बुड्ढा जी के साथ विचार-विमर्श में लीन थे कि उनको अपने गुरू जी का वियोग छा गया तथा उनके नेत्र विरह में द्रवित हो गए। तभी बाबा बुड्ढा जी ने इच्छा व्यक्त की कि हे गुरू जी क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम श्री गुरू नानक देव जी का जीवन तथा उन के उपदेशों का संग्रह कर के इस मानव समाज को अद्वितीय उपहार भेंट में दें। गुरू अंगद देव जी कहने लगे कि आपने तो मेरे मुंह की बात ही कह डाली, मैं भी तो यही चाहता हूँ। अत: इस कार्य पर आज से ही काम प्रारम्भ कर देना चाहिये। तब समस्या यह सामने आई कि इस कार्य के लिए सुयोग्य व्यक्ति कौन है, जिसे दक्ष मानकर यह महान कार्य सौंपा जाए? अत: सभी संगत इस प्रकार के विशेष व्यक्ति की खोज करने लगी। तभी बुड्ढा जी को ध्यान आया कि श्री गुरू नानक देव जी बताया करते थे कि जब वह सुलतानपुर लोधी में मोदी खाने का कार्यभार सम्भाले हुए थे तो उन दिनों उन की कीर्तन मण्डली में पैड़ा मोखा नामक शिष्य भी था जो कि बहुत शिक्षित था। वह गुरू जी में अपार श्रद्धा रखता था। अगर वह इस कार्य को सम्भाल ले तो गुरू जी का जीवन सहज भाव से लिखा जा सकता है। तत् पश्चात् गुरू अंगद देव जी ने संदेश भेज कर पैड़े मोखे को बुलाया। पैड़े मोखे ने आकर अपने गुरू जी के उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव जी के चरणों में शीश झुका कर वन्दना की और कहा, ''मेरे धन्य भाग्य जो आप ने मुझे याद किया है। भले ही हम पहली बार आपस में मिल रहें हैं परन्तु मैं आपके विषय में बहुत कुछ सुनता रहता हूँ। अत: मैं आप को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। यह संयोग की बात थी कि मैं जब गुरू नानक देव जी को मिलने आता तो आप अपने घर खडूर साहिब छुट्‌टी लेकर गये हुए होते तथा जब भी गुरुदेव जी सुलतानपुर आते तो संयोग वश आप साथ नहीं होते। इस लिए एक दूसरे से मिलन नहीं हो पाया। खैर! अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'' तब अंगद देव जी ने कहा कि गुरुदेव जी द्वारा रचित नई लिपि, जो आपने उन से सीखी थी, हम उस में उन का जीवन वृतांत आप से लिखवाना चाहते हैं, क्योंकि आप देव नागरी लिपी के भी बहुत बड़े विद्वान हैं। उत्तर में पैडा मोखे ने कहा कि आप ठीक कहते हैं। यदि मुझे यह अवसर दिया गया तो मैं गुरू नानक देव जी का जीवन वृतांत उन्हीं द्वारा रचित नई लिपी जो उन्होंने पंजाबी भाषा के लिए विशेष रूप से बनाई है, में आपको लिखकर दे सकता हूँ। अत: आप मुझे उन की जन्म-पत्री मंगवा दें जिससे उनका प्रकाश का समय तथा अन्य जानकारी प्राप्त हो सके। तब गुरू अंगद देव जी ने कहा, ''इस कार्य के लिए भी आप को तथा भाई बुड्ढा जी को तलवण्डी ग्राम में गुरू देव जी के चाचा श्री लाल चन्द जी के पास जाना होगा जो कि अब बहुत वृद्ध अवस्था में हैं।'' यह आदेश प्राप्त कर भाई बुड्ढा जी तथा पैड़ामोखा दोनों ही श्री गुरू नानक देव जी के जन्म स्थान 'राय भोए की तलवण्डी' कस्बे में पहुँचे और चाचा लाल चन्द जी को विनम्रता पूर्वक अपने आने का प्रयोजन बताया। चाचा लाल चन्द जी ने आये अतिथियों का हार्दिक स्वागत किया तथा कहा कि मैं भी नानक जी के उत्तराधि कारी के दर्शन करना चाहता हूँ। अत: मुझे भी आप के साथ चलना है। तब जन्म पत्री खोज निकाली गई। जिसे प्राप्त कर बाबा बुड्ढा जी, भाई पैड़ामोखा जी तथा चाचा लाल चन्द जी खडूर साहिब के लिए प्रस्थान कर गये। खडूर साहिब पहुँचने पर गुरू अंगद देव जी ने चाचा लाल चन्द जी का बहुत आदर-सत्कार किया जिस से चाचा जी बहुत प्रभावित हुए तथा उन्होंने गुरुदेव जी का आग्रह मानकर गुरू नानक देव जी का बाल्यकाल तथा तलवण्डी में बिताया जीवन लिखवाने का कार्य अपने उत्तर दायित्व में ले लिया।

अब भाई पैडा मोखा जी ने जन्म पत्री को देव नागरी लिपी से गुरू नानक जी द्वारा रचित नई लिपी (जिसका कि नाम करण करना बाकी था) में अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय सभी के मन मे आया कि यह नई लिपी जो कि गुरू जी के कर-कमलों से उत्पन्न हुई है, इस का क्या नाम रखा जाए। तब सभी एकमत होकर कहने लगे- इसका नाम गुरूमुखी रखते हैं, क्योंकि यह गुरू-मुख से उत्पन्न हुई है। क्योंकि गुरुदेव जी का मुख्य उद्देश्य था कि सभी वर्ग के लोग, विशेष कर जन साधारण इसे सीख पायें तथा संस्कृत जैसी भाषा, जो कि ब्राह्मण (पंडित) वर्ग तक सीमित है और लोक भाषा नहीं है, से छुटकारा प्राप्त कर स्थानीय भाषा को बढ़ावा देने के लिए इसे प्रयोग में लाया जाए।

भाई जीवा

भाई जीवा गुरू अंगद देव जी का सिख था। वह खडूर नगर से दो कोस की दूरी पर स्थित एक अन्य गांव में रहता था। वह प्रतिदिन साधु-संगत के लिए अपने घर से प्रसाद रूप में ''हलवा'' बनाकर लाता था। जब गुरू दरबार में कीर्तन तथा कथा इत्यादि की समाप्ति होती तो प्रार्थना (अरदास) के पश्चात हलवा अर्थात कड़ाह प्रसाद सभी भक्तजनों में वितरित किया जाता। परन्तु एकदिन मौसम में बदलाव के कारण आंधी के साथ घनघोर वर्षा होने लगी जिस कारण भाई जीवा जी महसूस करने लगे कि मैं प्रसाद लेकर समय अनुसार नहीं पहुँच पाऊँगा अत: उन्होंने प्रभु चरणों में प्रार्थना की कि हे प्रभु ! मुझे कुछ समय चाहिए जिस से मैं संगत में समय अनुसार प्रसाद पहुँचा सकूं। उनकी प्रार्थना पर तुरन्त वर्षा बंद हो गई और भाई जीवा जी समय रहते पहुँच गये। परन्तु गुरूदेव जी ने उस दिन उनका प्रसाद स्वीकार नहीं किया। इस पर भाई जीवा जी गुरूदेव के चरणों में झुके और प्रश्नवाचक दृष्टि से पूछने लगे - ''मुझसे क्या अवज्ञा हो गई है ?'' उत्तर में गुरूदेव ने कहा - यदि आज कुछ देरी हो भी जाती या आप न भी पहुँच पाते तो क्या हानि हो जानी थी, परन्तु आपने अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रभु के कार्य में हस्तक्षेप किया है। आपको प्रभु की रज़ा मे रहना चाहिए था। भक्त जन कभी भी प्रभु के कार्य में विघन-बाधाएं (रूकावटें) नहीं डाला करते। वह तो हर हाल में प्रसन्न रहना सीख जाते हैं।''

भाई गुजर जी (लौहार)

गुरू स्तुति सुनकर गुजर नामक एक लौहार परमार्थ का पंथी बनने की इच्छा से गुरू अंगद देव जी के दरबार में मार्गदर्शन की अभिलाषा लेकर उपस्थित हुआ। उसने गुरूदेव के समक्ष अपनी समस्याएं रखी कि समय के आभाव के कारण भजन के लिए अवकाश नहीं मिल पाता तथा गृहस्थी के झमेलों में उलझे रहने के कारण कोई भी समाज सेवा का कार्य भी नहीं कर पाता। अत: मेरा कल्याण कैसे सम्भव हो सकता है। गुरुदेव ने उसे सांत्वाना दी और कहा - ''जब हृदय में सत्य मार्ग पर चलने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाए तो सभी असम्भव कार्य स्वयं ही सम्भव होने प्रारम्भ हो जाते हैं क्योंकि आध्यात्मिक दुनिया में मन से किए गये कार्यों को ही फल लगता है। यदि आप कोई शुभ कार्य शरीर से करें परन्तु उसमें मन से लगाव न हो तो ऐसा कार्य फलीभूत नहीं होता। अत: जहाँ मन है वहाँ शरीर न भी उपस्थित हो तब भी हाज़री लग ही जाती है। अत: आप निराश न हो बस आपको अपनी जीविका कमाते समय ध्यान में रखना चाहिए कि मैं शुभ कर्म करते हुए उत्तम विधी अनुसार धन अर्जित करूँ जिस में किसी का शोषण न हो। दूसरा दीन-दुखी अथवा असहाय लोगों की यथाशक्ति सहायता भी की जाए। ऐसे में प्रभु की हृदय में याद, जिसे हम सुरति स्मरण करते हैं, फलीभूत होता है, जो कि अनेक गुणा हितकर है जो मनुष्य को शिखर पर ला खड़ा कर देती है। जिससे फिर आवागमन का चक्र समाप्त होकर व्यक्ति प्रभु चरणों में लीन हो जाता है।

गुरूदेव से सीख धारण कर भाई गुजर जी अपने घर पर गृहस्थी के सभी कार्य करते हुए धर्म की किरत-कार (परिश्रम से धन अर्जित करना) करने लगे। समय-समय पर वे अपने अड़ोस-पड़ोस के निर्धन अथवा मजबूर लोगों की आर्थिक सहायता करते रहते। आपका प्रत्येक कार्य निष्काम व नि:स्वार्थ होता। एक बार अर्धरात्री को आपका द्वार किसी आगंतुक ने खटखटाया, जब आपने द्वार खोला तो पाया कि दो व्यक्ति जिनके हाथों में हथकड़ियाँ हैं विनति कर रहे थे कि हमें बन्धनों से मुद्र करो क्योंकि हम निरापराध हैं। भाई गुजर जी ने उनकी पूरी वार्ता सुनी, जब उनको उन व्यक्तियों की बात में सत्यता की झलक मिली तो वह उन व्यक्तियों को मुद्र करने के लिए तैयार हो गये। परन्तु इस कार्य ने स्थानीय प्रशासन से शत्रुता मोल लेनी थी, इसलिए भय अधिक था क्योंकि वह स्वयं संकट में फँस सकते थे। अत: उन्होंने एक कठोर निर्णय लिया और उन कैदियों की हथकड़ियाँ अपने औज़ारों से काट दी और उनको दूसरे राज्य में भेजने का प्रबन्ध कर दिया। वास्तव में ये कैदी ईर्ष्या के कारण किसी षड्यंत्र को शिकार होकर किसी हत्या के आरोप में सज़ा भुगत रहे थे।

भाई धिंग नाई

नाई धिंग जी लम्बे समय से किसी पूर्ण पुरूष की तलाश में थे। जब भी समय मिलता परमार्थ के कार्यों में सलग्न रहते परन्तु उनके मन की रीझ थी कि वह किसी परमेश्वर के प्यारे की संगत करके दिव्य ज्योति प्राप्त करें । उनकी यह मंशा रंग लाई। खोजते-खोजते वह कीर्तन के आकर्षण से गुरू अंगद देव जी के दरबार में पहुँच गये। प्रात:काल जब उन्होंने संगत में बैठकर

अमृतमयी वाणी के यह शब्द सुने तो वह वहीं के होकर रह गये :-

आपि उपाए नानका आपे रखै वेक।।
मंदा किसनो आखिऐ जां सभना साहिबु एकु।।
समना साहिबु एकु है वेखै धधौ लाइ
किसै थोणा किसै अगला खाली कोई नाहि।।
आवहि नंगे जाहि नंगे विचे करहि विथार।।
नानक हुकमु ना जाणिऐ अगै कोई कार।।

पृष्ठ 1238

आप लंगर में पानी भरने की सेवा करने लगे। जब लंगर की आवश्यकता पूरी हो जाती तो कुएं पर स्नान कर रहे सिक्खों की स्नान करने में सहायता करते अथवा पानी कुएं से निकाल कर देते रहते। बस इस प्रकार आप स्वयं को सदैव निष्काम सेवा में व्यस्त रखते ताकि अवकाश का समय ही न मिले। आप का विचार था कि मन चंचल है, जब कोई कार्य नहीं रहेगा तो मन कहीं न कहीं भटकेगा अथवा गलत कल्पनाएं (खुराफात) करेगा। जिससे व्यक्ति को मानसिक कष्ट उठाने पड़ते हैं, हमारी विचारध ाारा कच्ची होती है क्योंकि हम अल्पग हैं। जब तक पूर्ण गुरू के सान्निध्य में रह कर नीच 'प्रवृति' त्यागकर उनके दर्शाए मार्ग पर जीवन व्यापन प्रारम्भ नहीं करते।

इन महानुभाव की सेवा एक दिन रंग लाई। एक दिन लंगर में गुरूदेव जी ने भोजन के उपरान्त भाई धिंग जी को बुलाकर कहा - ''हम आपकी सेवा से प्रसन्न हुए हैं, अत: आप क्या चाहते हैं ?'' इस पर भाई धिंग जी ने गुरू चरणों में दण्डवत नमस्कार करके बोले - ''मैं केवल और केवल सिखी प्राप्त करना चाहता हूँ, जिससे समाज में जीवन जीने का कौशल आ जाए।'' यह मांग सुनकर गुरूदेव अति प्रसन्न हुए और उन्होंने फिर वचन किया -'' धिंग जी आपका जीवन सफल हुआ। आपकी जीवन कई अन्य प्राणियों के लिए प्रेरणा स्रोत बनेगा क्योंकि आपने सिखी अपने परिश्रम से कमाई है और सिखी के समझा है। वास्तव में सिखी किसी दिखावे का नाम नहीं, वह तो सर्वत्र निछावर कर अपना अस्तित्व मिटा डालने का नाम है। अत: आपके पास सिखी पहले से ही विद्यमान है। इसलिए आप इसके अतिरिक्त कुछ और मांग लें।'' उत्तर में धिंग जी बोले - ''सभी कुछ तो आपका दिया हुआ है। यदि कृपा सिंधू आप मुझ नाचीज़ पर प्रसन्न हुए हैं तो मुझे प्रभु नाम-दान दीजिए। गुरूदेव ने कहा - ''जिस व्यक्ति ने परिश्रम से सिखी कमा ली हो उसके पास स्वयं नाम रूपी धन चला आता है क्योंकि इस अमुल्य निधी का सिखी के साथ चोली-दामन का साथ है। जहां नाम धन है वहां विश्व ही सभी बरकतें सम्मिलित हो जाती हैं।''

भाई पारो जुल्का जी

एक जिज्ञासू जिसका नाम पारो जुल्का था, वह आध्यात्मिक प्राप्तियों के लिए कई सन्यासियों, योगियों तथा साधु मण्डलियों के डेरों, आश्रमों पर जाता रहा और समय-समय पर उनकी सीख धारण करके उनके द्वारा बताए गये साधना के नियमों को प्रयोग करके आध्यात्मिक प्राप्तियों के प्रयास में लीन रहा परन्तु उनके मन को शाति अथवा तत्व ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए उनकी भटकना समाप्त नहीं हुई क्योंकि वह अपने को अधूरा ही पा रहे थे। वास्तव में उनका लक्ष्य प्रभु की दिव्य ज्योति के दर्शन करना अथवा उस में समा जाना था। इस लम्बे समय में वह योगाभ्यास की कई विधियाँ सीख चुके थे और वह अपने श्वास स्थिर कर दशम द्वार पर एकाग्र करके अपने को शून्य अवस्था में ला सकते थे। परन्तु उनको नाम महारस का खज़ाना अमृतकुण्ड तब भी हाथ नहीं लगा। जबकि वह अनुभव करते थे कि योग साधना अथवा हठ योग से ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करने का बल उनमें आ गया है। एक सच्चे जिज्ञासू होने का नाते वह अपनी खोज जारी रखे हुए थे क्योंकि वह अपनी प्राप्तियों को तुच्छ जानकर उनसे सन्तुष्ट नहीं थे। एक दिन उनका परिश्रम काम आया। उनका किसी व्यक्ति ने बताया कि यदि आप आध्यात्मिक मण्डल की पूर्ण प्राप्ति चाहते हैं तो गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव जी की शरण में जाओ। वह पूर्ण गुरू हैं, अत: वह आपका मार्गदर्शन करेंगे। फिर क्या था, भाई पारो जुल्का जी लम्बी यात्रा करके खडूर नगर पहुँचे।

खडूर में उनको गुरूदेव से सीधा सम्पर्क नहीं हो पाया क्योंकि गुरूदेव सदैव संगत के अनेकों कार्यो में व्यस्त रहते थे। तब भाई पारो जुल्का जी संगत में बैठकर कीर्तन श्रवण करते अथवा गुरूदेव जी के प्रवचन सुनते जो गुरूदेव समस्त संगत के लिए करते थे। सुनते-सुनते कुछ दिन इसी प्रकार साधु-संगतों की संगत करते-करते वह जान गये कि गुरूदेव के पास प्राप्तियाँ केवल हृदय की पवित्रता से होती हैं और हृदय की पवित्रता प्राप्त होती है खुद को समर्पित करके संगत की सेवा करने से। इस रहस्य को जानकर वह लगे तन-मन से संगत की सेवा करने। इस प्रकार उन्होंने अपने सुख-आराम का ध्यान भी त्याग दिया। बस एक ही धुन थी कि किस प्रकार गुरूदेव को रिझाएँ ? इसी प्रकार समय व्यतीत होने लगा। एक दिन गुरूदेव लंगर व्यवस्था देखने आये

और भाई जुल्का जी को सेवा में लीन देखकर उनको आलिंगन में लिया और वचन किया – ''सिक्खा, माँग ! तुझे जिस वस्तु की अभिलाषा है।'' इस पर भाई जी चरणों में गिर पड़े और रूँधो कण्ठ से कहने लगे – ''मुझे केवल और केवल नाम–दान चाहिए।'' यह सुनकर गुरूदेव अति प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा – ''सिक्खा, तेरा घालना (परिश्रम) रंग लाया है, तुझे मन वांछित फल की प्राप्ति होगी क्योंकि आप निष्काम सेवा में लीन रहते थे। आप हंस प्रवृति के हैं। आपने अपनी कामनाओं का त्याग कर तत्व–सार का पान करने के लिए, ऋद्धि–सिद्धियों को भी तुच्छ जानकर, उनको निष्क्रिय करके सतगुरू की खोज में जुटे रहे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हंस दूध के मिश्रण से केवल कुछ दूध ही पीता है, पानी वहीं रहने देता है। जो व्यक्ति प्रेमा–भक्ति के मार्ग पर चलेंगे वे परम तत्व को प्राप्त होंगे। योग साधना से शद्गि तो अर्जित की जा सकती है किन्तु सच्चिदानंद से विलय सम्भव नहीं क्योंकि वहां पर तृष्णा की दीवार बनी रह जाती है।'' इस बात को स्पष्ट करने के लिए गुरूदेव ने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया –

जिन वडिआई तेरे नाम की ते, रते मन माहि।।
नानक अमृतु एकु है, दूजा अम्रित नाहि।।

यथा

नानक अम्रित मनै माहि, पाईऐ गुरप्रसादि।।
तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि।।

मल्लूशाह

मल्लू शाह नामक एक सैनिक गुरू अंगद देव जी की शरण में आया और उनके दरबार की सेवा में व्यस्त रहने लगा। परन्तु उसके मन में सदैव एक भय बना रहता कि मैं एक सैनिक हूँ, अत: मुझसे युद्धकाल में हत्याएँ हो सकती हैं जिससे मै अपराध ी बन जाऊँगा। यदि नौकरी का त्याग करता हूँ तो जीविका के लिए भटकना पड़ेगा अथवा दूसरों पर निर्भर रहना पड़ेगा। यह दूविध ा उसको सताने लगी। अत: उसने एक दिन अपने मन में बसी शंका गुरूदेव के समक्ष रखी। गुरूदेव ने उसकी समस्या की निवारण करते हुए उसे बताया – ''आप लोग देश के रक्षक हैं। यदि अपना कर्त्तव्य करते हुए, समाज विरोधी तत्वों अथवा दुष्ट लोगों, जो समाज का शोषण करने की चेष्टा करते रहते हैं, समय रहते उनका न्याय प्रणाली द्वारा दण्डित करते हैं अथवा मार देते हैं तो आप वास्तव में पुण्य का कार्य करते हैं। इसके विपरीत यदि सैनिक अथवा सिपाही अपना कर्त्तव्य उचित विधी से पालन न करें, भ्रष्टाचारी तत्वों अथवा अवांछनीय लोगों से मिलीभगत करेंगे तो वे दोगुणे अपराधी हैं क्योंकि वे रक्षक के स्थान पर समाज के भक्षक बन जाते हैं। जिससे देश की न्याय प्रणाली छिन्न–भिन्न हो जाती है और अंत में उग्रवाद जन्म लेता है। इस प्रकार देश पतन की ओर बढ़ जाता है। ठीक इसी तरह विदेशी आक्रमण के समय जो योद्धा लोग अपने देश की सुरक्षा करते हुए रणक्षेत्र में काम आते हैं वे सर्वश्रेष्ठ मृत्यु को प्राप्त होते हैं। क्योंकि वे सिपाही निष्काम किसी ऊँचे आदर्श के लिए अपने प्राणों की आहुति देते हैं। संसार उनको शहीद कहता है और सम्मानित करता है। प्रभु के घर में उनको मोक्ष प्राप्त होता है और वे आवागमन के चक्कर से मुद्र होकर परमधाम को प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ एक बात समझने की है, मृत्यु तो अटल सच्चाई है, वह तो कभी भी आ सकती है, परन्तु जो वीर योद्धे विरोधी पक्ष के सैनिकों के साथ लोहा लेते समय, दो हाथ देखते और दो हाथ दिखाते हैं, उनके हाथों हत्याएँ, हत्या नहीं कहलाती। क्योंकि वे समान शक्ति वाले शत्रु से जूझते हैं।''

गुरूदेव ने उसकी शंका निवारण करते हुए बताया कि धर्म–कर्म करना अथवा उज्जवल आचरण से जीवन व्यतीत करना, इसमे सैनिक होना कोई बाधक नहीं है क्योंकि निष्ठावान सैनिक देश का गौरव होते हैं। वही देश का मान बढ़ाते हैं तथा उन्हीं के बलिदानों से जनता अपने को सुरक्षित समझती है। यदि समस्त नागरिक ऐसा विचारने लगे कि हत्या करना पाप है तो देश की सीमाओं की सूरक्षा का कार्यभार कौन सम्भालेगा ?

ऐसी परिस्थिति में शत्रु देशो के हमारी शाति भंग करने का अवसर मिल जाएगा। वे हम पर आक्रमण करके हमें पराजित करके हमें अपने आधीन बना लेंगे और हम शासक से गुलाम बन कर रह जाएँगे। अत: सदैव शांति बनाए रखने कि लिए सैनिक बल से शक्ति संतुलन बनाए रखना अतिआवश्यक है।

गुरूदेव ने उसे समझाया कि ईश्वरीयं चिंतन तथा उसके द्वारा बनाये गये प्राणी मात्र पर दया का यहाँ केवल यही अर्थ है कि

किसी निरापराध लोंगों पर अत्याचार न हो और सैनिक अपने बाहुबल का दुरूपयोग न करें।

मल्लू शाह ने इस सीख को धारण किया और गुरूदेव जी से गुरू दीक्षा लेकर लौट गया।

भाई किदारू जी

गुरू शोभा सुनकर भाई किदारा जी खडूर नगर पहुँचे। उन्होंने सत्गुरू जी के दर्शन किये और अपने मन में बसी शंका गुरूदेव को बताई और कोई उचित समाधान बताने के लिए विनती करने लगे। आपने गुरूदेव से पूछा कि समाज में जीने के लिए सभी प्रकार के मनुष्यों से सम्बन्ध बनते रहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक अवस्था भिन्न-भिन्न होती है। अत: उसकी विचारधारा तथा उसके कार्यो का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है जिससे न चाहते हुए भी मन समय-समय पर विचलित हो जाता है क्योंकि जीवन में उतराव-चड़ाव बार-बार आता ही रहता है और समाज में अनेक प्रकार की मनोवृतियों वाले व्यक्ति स्थिर व्यक्ति से अनुचित लाभ उठाकर उसको मुर्ख अथवा भोला बताकर उसका परिहास करते हैं। यदि व्यक्ति ऐसे लोगों से सावधान रह कर उन्हीं की तरह अपना व्यवहार बना लेता है तो समाज में बहुत से व्यंगों का सामना करने पड़ता है। कोई कहता है, यह तो बगला भक्त है, कोई कहता है पाखण्डी है, कोई कहता है ढोंगी है। समाज जीने नहीं देता। वैसे मैं अपने आप पर कड़ा नियंत्रण करने का प्रयास करता रहता हूँ कि पाँचों तस्कर (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार) इत्यादि प्रवृतियों पर अंकुश लगाकर रखा जाए। परन्तु कई बार स्थिति विस्फोटक हो जाती है, सब कुछ वहीं धरा रह जाता है और व्यक्ति मानसिक संतुलन खो बैठता है। ऐसे में क्या किया जाए और किसकी शरण में जाएँ ?

गुरूदेव ने उनको सांत्वना दी और कहा - ''गृहस्थ में रहकर यदि कोई प्राप्तियाँ करना चाहता है तो उसको निन्दा-स्तुति से ऊपर उठकर दृढ़ता से सैद्धांतिका जीवन जीना होता है। कदम-कदम पर परीक्षाएँ होती हैं, विचलित नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षण प्रभु की ओट लेनी है। अंत में विजय आप की ही होगी। बस जीवन को सन्तुलित बनाना चाहिए वैसे ही जैसे नट लोग हवा में एक बाँस के सहारे एक तनी हुई रस्सी पर चल कर दिखा देते हैं।''

भाई किदारू जी को बात समझ में आ गई परन्तु उन्होंने फिर से अपनी समस्या के दूसरे पहलू को गुरूदेव के समक्ष रखा और पूछा- ''मन बहुत चंचल है, वह बार-बार भटकता है, विशेषकर ये पाँच तस्कर अर्थात विषय विकार अथवा माया मोह की आग से अपने को किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए ?'' इस प्रश्न के उत्तर में गुरूदेव ने कहा - ''कभी-कभी जंगल में हवा के झोंकों से बाँसों के आपस में टकराने से आग लग जाती है। जब वन जल उठता हैं तो वहाँ के मृग तुरन्त भाग कर पास के नदी, नालों अथवा तालाबों की शरण लेते हैं। ठीक इसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष के भट्टी में जलने से पहले सतसंग रूपी शीतल समुद्र की शरण ले लेनी चाहिए जिससे विवेकी पुरूष पर संसारिक प्रभाव नहीं पड़ता।''

भाई जग्गा जी

जग्गा नामक जाट को साधु-संगत में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां उनको ज्ञात हुआ कि प्रभु ने हमें मानव शरीर इसलिए प्रदान किया है कि हम चिन्तन-मनन से अपने आवागमन का चक्र समाप्त करके वापस प्रभु चरणों में समा कर उस में लीन अथवा अभेद हो जाए। बस फिर क्या था, उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया, लगे प्रभु भजन करने जिससे उनको चौरासी लाख योनि भोगने का भय समाप्त हो जाए। परन्तु उनको कुछ मित्रों ने समझाया कि भजन बन्दगी तभी फलदायक होती है जब हम किसी पूर्ण पुरूष के सानिधय में यह कार्य करें अथवा गुरूधाारण करके उनसे गुरू दीक्षा प्राप्त करें। यह बात उनके मन में बस गई। वह विचारने लगे, हर गुण का एक विशेषज्ञ होता है, सत्य के मार्ग पर चलने के लिए भी किसी सत्य पुरूष को गुरू धाारण करना चाहिए, जिससे मेरे मन की कामना पूर्ण हो अर्थात पूर्ण ज्ञान मिलने में सहजता प्राप्त हो जाए। इसी धाुन में वह सत्गुरू की खोज में घूमने लगे। एक दिन उनको एक योगी-सन्यासी मिला जो गृहस्थी त्यागकर वन-वन भटकता फिर रहा था और उदरपूर्ति के लिए द्वार-द्वार जाकर अलख-निरंजन कहकर भिक्षा मांग रहा था। उसने जग्गा जी को दुविधाा में डाल दिया और कहा - ''यदि प्रभु से मिलने की अभिलाषा रखते हो तो सन्यासी अवश्य होना पड़ेगा, क्योंकि गृहस्थी में प्रभु प्राप्ति हो ही नहीं सकती।'' यह सब सुनकर जग्गा जी विचलित नहीं हुए क्योंकि उनको स्मर्ण हो आया कि गुरू नानक देव जी पूर्ण गुरू हुए हैं जबकि वह एक गृहस्थी भी थे और उन्होंने गृहस्थ में भी प्राप्तियाँ होने का उपदेश दिया है, क्यों न मैं उन्हीं से दीक्षा ले लूँ। अत:

वह गुरू नानक देव जी को मिलने चल पड़े। रास्ते में उनको ज्ञात हुआ कि गुरूदेव स्वयं तो परमज्योति में विलीन हो चुके हैं। परन्तु उनका परम सेवक भाई लहणा इन दिनों उनके उत्तराधिकारी के रूप में गुरू अंगद देव रूप धारण करके खडूर नगर में मानव कल्याण हेतु कार्यरत हैं। तब उन्होंने रास्ता बदलकर खडूर नगर की ओर प्रस्थान किया। खडूर में गुरूदेव ने उनका हार्दिक स्वागत किया और सेवा करने को कहा। जग्गा जी आज्ञा पाते ही संगत की सेवा में जुट गये और निष्काम सेवा के साथ हृदय से भजन भी करने लगे। सेवा करते बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक दिन गुरूदेव लंगर में पधारे तो उन्होंने पाया कि भाई जग्गा जी लंगर में कड़े परिश्रम से जल भरने की सेवा में तत्पर रहते हैं। उनकी सेवा देखकर गुरूदेव ने उनको कंठ से लगाया और कहा - ''जो व्यक्ति आध्यात्मिक प्राप्तियाँ चाहता है वह मानव मात्र की सेवा में जुट जाता है और प्रत्येक प्राणी में उसका वास देखता है। यदि ऐसा करने में कोई सफल हो जाता है तो जान लो उस व्यक्ति का हृदय पवित्र हो चुका है। उसे कण-कण में प्रभु दिखाई देता है। बस यह पहली मंजिल है उसे सच्चिदानंद से मिलने की, फिर आगे प्राप्तियाँ होती ही जाएँगी। यह सब गुरू नानक के घर का सहज मार्ग है। इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है, न घर-बार त्यागने की जरूरत है, न कोई कठिन साधना करनी पडती है, न नंगे रहना पड़ता है, न भिक्षा मांगनी पड़ती है, न दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं, केवल माया में रहते हुए माया से निर्लिप्त रहना पड़ता है जैसे कमल का फूल अथवा मुर्गाबी पानी में रहते हुए भी पानी से लिप्त नहीं होते। यह सब सुनकर भाई जग्गा जी अति प्रसन्न हुए और अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए प्रश्न पूछा - ''जो लोग घर-बार त्याग कर सन्यासी जीवन जीते हैं, क्या उनको हम लोगों से अधिक प्राप्तियां होती हैं ?'' इस प्रश्न पर गुरूदेव ने उन्हें समझाया - ''प्राप्तियाँ वहीं होती हैं जहाँ प्रकृति के नियमों का अनुसरण करके उस के अनुकूल जीवन ढाला जाए। जहाँ प्रकृति का विरोध होगा अथवा हठ होगी, वहीं विनाश होगा। क्योंकि गृहस्थ आश्रम प्रकृति का मार्ग है इसलिए इसमें सभी कुछ फलीभूत होता है। जो लोग सन्यास लेते हैं, वह वास्तव में निखटू होते हैं। अपनी जीविका का भार भी गृहस्थियों पर डाल देते हैं, जिससे सामाजिक कठिनाईयां उत्पन्न होती हैं। यदि कोई सच्चा सन्यासी कुछ प्राप्ति करता भी है तो वह अपनी उदर-पूर्ति के बदले में सब कुछ गृहस्थियों में बांट देता है। स्वयं फिर वैसा का वैसा ही रह जाता है। बिलकुल वैसे जैसे घास डालकर हम गाय से दूध ले लेते हैं। ऐसे ही उस सन्यासी को भोजन देकर गृहस्थी उससे सब आध्यात्मिक प्राप्तियाँ ले जाते हैं।

अमर दास जी

श्री गुरू अमर दास जी का प्रकाश (जन्म) ज़िला अमृतसर, गांव बासरके में 5 मई सन् 1479 तद्‌नुसार 8 जेष्ठ संवत 1536 को पिता तेजमान के गृह, माता सुलक्णी (लक्ष्मी) की कोख से हुआ। आप का विवाह श्री देवी चन्द जी की सुपुत्री राम कौर जी के साथ सन् 1502 में समपन्न हुआ। आप की चार सन्ताने हुई क्रमशः मोहन जी व मोहरी जी तथा दो पुत्रियां दानी व मानी जी।

पूर्ण गुरू की खोज

अमर दास जी प्रारम्भिक जीवन में 40 वर्ष की आयु तक खेतीबाड़ी पर आधारित व्यापार इत्यादि का कार्य करते रहे। उसके पश्चात आपने यह काम पुत्रों को सौंपकर स्वयं आध्यात्मिक प्राप्ति के दृढ़ निश्चय से प्रति वर्ष गंगा स्नान के लिए हरिद्वार जाना आरम्भ कर दिया। लगभग यह कार्य 20 वर्ष मक चलता रहा। एक बार यात्रा के मधय में आपको वैष्णव साधु मिला जो आपके काफिले में सम्मिलित हो गया। आप के मधुर व्यवहार ने उसका मन मोह लिया वह आपकी निकटता प्राप्त कर आपके हाथ का तैयार भोजन करने लगा। वापस लौटते समय उसने जिज्ञासावश आप से पूछ लिया कि आपका आध्यात्मिक गुरू कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में आपने कहा - ''मैंने अभी तक गुरू धारण नहीं किया।'' यह उत्तर सुनते ही वैष्णव साधु बहुत छटपटाया और उसने कहा - ''मेरा धर्म भ्रष्ट हो गया है। मैंने एक गुरू विहीन व्यक्ति का तैयार किया हुआ भोजन कर लिया है।'' अतः वह अपने आपको कोसता हुआ वहां से चला गया। इस घटना का अमर दास जी के हृदय पर गहरा आघात हुआ। वह विचारने लगे, क्या मैंने जीवन के अमूल्य 60 वर्ष व्यर्थ में नष्ट कर दिये हैं ? क्या गुरू विहीन व्यक्ति की गति सम्भव नहीं ? इसी चिन्ता में जब वे अगले पड़ाव पर मेहड़े ग्राम दुर्गा ब्राह्मण की धर्मशाला में विश्राम कर रहे थे तो दुर्गा ब्राह्मण जो कि ज्योतिष विद्या का भी ज्ञान रखता था ने अमर दास जी के चरणों में देखा कि वह चमक रहे थे, उसने ध्यान दिया तो उस की विद्या अनुसार वह पद्म रेखा थी जो कि किसी प्राकर्मी पुरूष अथवा चक्रवर्ती सम्राट के चरणों में होनी चाहिए। अमर दास जी के जागने पर उसने उनको पूछा कि आप कौन हैं ? मेरी विद्या अनुसार आपसाधारण व्यक्ति नहीं हो सकते, क्योंकि आपके चरणों में पद्म रेखा है।

इस पर अमर दास जी ने बताया कि वह तो एक साधारण पुरूष ही हैं। यह उत्तर सुनकर वह पंडित बहुत चकित हुआ परन्तु कुछ सोच कर कहने लगा – ''मेरी विद्या कभी गलत नहीं हो सकती यदि आप प्राकर्मी पुरूष नहीं तो जल्दी ही आप को कोई तेजस्व प्राप्त होने वाला है।'' इस घटना के बाद जब आप घर वापिस पहुँचे तो एक दिन प्रात:काल आपके भाई की बहू दही मथते समय अपने सूरीले स्वर में गा रही थी जो कि भोर के समय मन को आकृष्ट कर रहा था।

भइआ मनूर कंचनु फिरि होवै, जे गुरू मिलै तिनेहा।।
ऐकु नामु अम्रित अहु देवै, तउ नानक त्रिसटसि देहा।।4।।

पृष्ठ (474)

ध्यान देने पर उन्होंने पाया कि यह पंक्तियां जीवन में क्रांति लाने वाली है। उन्होंने बहू को बुला भेजा और पूछा बेटी यह जो रचना तुम गा रही थी किस महापुरूष की है तथा वह कहाँ रहते हैं ? उत्तर में बहू ने बताया कि यह वाणी गुरू नानक देव जी की है जो कि इन दिनों ज्योति विलीन हो चुके हैं परन्तु उनकी गद्दी पर मेरे पिता अंगद देव जी विराजमान हैं। यह सब जानकारी प्राप्त होने पर अमर दास जी खडूर नगर पहुँचे। वहाँ पर गुरू अंगद देव जी ने उनका हार्दिक स्वागत किया किन्तु अमर दास जी ने कहा – ''मैं समधी के नाते से आपको मिलने नहीं आया, मैं तो सत्य + गुरू की खोज में भटकता रहा हूँ। अंत में आपकी शरण में आया हूँ। मुझे पूर्ण आशा है गुरू नानक के दर से मुझे निराश नहीं लौटना पड़ेगा। अत: आप मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार करें।

गुरू अंगद देव जी ने उनकी सच्ची लगन देखकर उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। अब अमर दास जी दिन-रात गुरूदेव जी की सेवा में तत्पर रहने लगे। आप जी अर्धरात्री को नगर के बाहर के विशेष कुएं से जल लाकर गुरूदेव को स्नान करवाते और समस्त दिन लंगर इत्यादि की सेवा में व्यस्त रहते। जो भी कार्य करते तन-मन से करते जिसे देखकर गुरूदेव प्रसन्न होते और उनको प्रत्येक वर्ष एक पुरस्कार रूप में दस्तार देते। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

भाई माणा

गुरू अंगद देव जी के लंगर का यश दूर-दूर तक फैल गया कि गुरूदेव जी के लंगर में स्वादिष्ट भोजन हर समय बिना भेद-भाव बांटा जाता है। यह सुनकर कुछ निखटू किस्म के लोग भी गुरू घर में निवास करने लगे। इन्हीं में एक माणा नामक व्यक्ति दोनों समय डट कर भोजन करता और उपरान्त समय व्यतीत करने के लिए कहीं दूर वृक्षों की छाया में सो जाता। इस प्रकार बहुत से दिन गुजर गये। एक दिन उस व्यक्ति को सेवादारों ने समझाया के यहां जो व्यक्ति भी आता है वह गुरू दर की सेवा करके अपना जन्म सफल करने का प्रयास करता है अत: आप भी यथा शक्ति कुछ न कुछ सेवा अवश्य ही किया करें। यह सुनकर माणा बोला – ''मैं गुरू का शिष्य हूँ उनके आदेश पाकर उनकी सेवा करूँगा, तुम्हारे कहने पर मैं सेवा क्यों करूँ ? मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ। इस प्रकार दिन कटते गए।

एक दिन बाबा बुडढ़ा जी ने उसको समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि यह स्थान कुछ प्राप्तियों के लिए है, बिना किसी कारण सिर पर भार नहीं उठाया करते परन्तु वह नहीं माना और गुरूदेव के समक्ष जाकर खड़ा हो गया और कहने लगा – ''ये आपके सेवक मुझ से ईर्ष्या करते हैं और मुझे चैन से जीने नहीं देते – मुझे अन्य व्यक्तियों की सेवा करने को बलपूर्वक कहते हैं। मैं लोगों की सेवा क्यों करूँ, मैं आप का शिष्य हूँ। मैं तो केवल आपकी सेवा करना चाहता हूँ। कृप्या आप मुझे कोई अपनी सेवा बतायें।'' यह सुनकर गुरूदेव ने उसे समझाया कि संगत की सेवा, हमारी ही सेवा है, मैं संगत में ही वास करता हूँ किन्तु वह जिद करने लगा। नहीं गुरू जी मैं तो केवल आप की ही सेवा करूंगा। उसका मूर्खों वाला हठ देखकर गुरूदेव ने आदेश दिया कि जाओ हमारी तो यही सेवा है – जल मरो।

यह कड़े वचन सुनकर वह डगमगा गया। गुरूदेव का आदेश था जलकर मर जाओ, इस हुक्म का दृढ़ता से पालन करना कठिन ही नहीं असम्भव सा मालूम हो रहा था परन्तु करता भी क्या ? अब वह जन-साधारण के सामने मुँह दिखाने योग्य भी नहीं था। अत: वह मन मारकर जंगल में चला गया और वहां लकड़ियां इकट्ठी कर चिता तैयार कर ली और उसको आग लगा कर जला लिया परन्तु अब उस में कूदकर मरे कौन ?

जब चिता पूरी तरह जल उठी तो उस ने चिता की परिक्रमा करनी प्रारम्भ कर दी और एक-दो बार उसमें कूदने की असफल प्रयास भी किया किन्तु अधिक ताप तथा मृत्यू का भय उसे ऐसा करने से रोक लेता। यह सब दृश्य एक चोर देख रहा था जो कि पड़ोस के नगर से किसी व्यक्ति के यहाँ से उसकी स्त्री के गहने चुराकर लाया था और सरकारी कर्मचारियों (पुलिस) की मार से बचने के लिए यहां जंगल में छिपा बैठा था। वह चोर प्रकट हुआ और उसने भाई माणा से पूछा – ''आप यह सब क्या कर रहे हैं ?'' इस पर माणा ने सब वृत्तांत उसे कह सुनाया। यह सब सुनकर कि गुरूदेव का इसे जलकर मरने का आदेश

है। वह चोर माणा जी से कहने लगा कि आप मेरे साथ एक व्यापार कर लें, मुझे गुरूजी का वचन बेच दें और यह गहने उसके बदले में ले लें। भाई माणा जी को यह सौदा अच्छा लगा उन्होंने तुरन्त सहमति दे दी। इस पर चोर ने कहा कि आप गुरूदेव के आगे प्रार्थना करें कि मैंने आपका वचन इस चोर का बेच दिया और उसके बदले में यह गहने ले लिये हैं क्योंकि मैं मृत्यू के डर से आपका यह वचन कमा नहीं सकता। भाई माणा जी ने ऐसा ही किया, तभी चोर ने उनके देखते ही देखते भड़की हुई चिता में छलांग लगा दी और वह कुछ ही क्षणों में भस्म हो गया।

गुरूदेव के वचनों पर अथाह श्रद्धा रखने के कारण उस चोर को परम् पद की प्राप्ति हुई। परन्तु दूसरी ओर माणा जी वह गहणों का डिब्बा लेकर उसे बेचने निकट के नगर पहुँचे। सर्राफ ने माल चोरी का है जल्दी ही जान लिया और पुलिस को संदेश भिजवाकर माणा को चोरी के आरोप में गिरफतार करवा दिया। पुलिस पहले से चोर की तलाश में थी अत: माल तिलते ही माणा को मृत्यू दण्ड दे दिया गया।

सलामु जवाबु दोवे करे मुंडहु घुथा जाइ।।
नानक दोवे कूड़ीआ थाइ ना काई पाइ।।

पृष्ठ 474

गुसाईं देव गिरी

गुसाईं देव गिरी नामक एक सन्यासी अपने अनुयाईयों के साथ गुरू स्तुति सुनकर खडूर नगर पहुँचा। उनका लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना तथा जन-साधारण को फिर बांटना था। वह संगत में बैठ कर प्रतिदिन गुरूदेव के प्रवचन सुनते और अपनी शंकाओं को निवृत करने के लिए विचारों का आदान-प्रदान संगत के साथ करते। कीर्तन तो उनके मन को बहुत भाता, वह मंत्र-मुग्ध ा होकर एकाग्रचित्त हो लम्बे समय तक बैठे रहते। यहाँ उनको एकीश्वरीय प्रेम की वाणी से शांति मिलती। अत: वह आत्म विभोर हो उठे। एक दिन उनके मन में आया कि मैं अपना सर्वस्व गुरूदेव पर न्यौछावर कर दूँ क्योंकि वह देख रहे थे कि आत्मा की भूख के साथ गुरूदेव शारीरिक भूख भी मिटाने का हर समय प्रबन्ध किये हुए हैं। यहाँ पर बिना भेद-भाव के सभी भोजन पा सकते हैं। लंगर व्यवस्था पर वह रीझ उठे और विचार करने लगे, यदि मैं अपनी स्मस्त पूंजी भी गुरू जी को दे दूँ तो भी इस नेक कार्य के लिए कम है। अत: वह शुभ अवसर देखकर गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुए और विनम्र बनकर विनती करने लगे – ''हे गुरूदेव मेरी यह भेंट स्वीकार करें, वास्तव में यह अद्वितीय खज़ाना है।'' इस प्रकार उन्होंने एक पोटली गुरूदेव के सामने रख दी और उसका रहस्य गुरूदेव जी के कान में बताने लगे।

गुरूदेव सब कुछ सुनकर मुस्कुराए और कहने लगे, गुरू नानक के दर पर किसी वस्तु की कमी नहीं है। हमें आप का यह रसायन नहीं चाहिए न ही हम सोना बनाने की विधि आपसे सीखना चाहते हैं। हमने नाम रूपी रसायन प्राप्त किया हुआ है जिस में सभी प्रकार की बरकतें सदैव बनी रहती हैं और किसी प्रकार की कमी नहीं आती। गुरू नानक दर का लंगर केवल संगत के दशमांश्स (आय का दसवां भाग) से चलते हैं जो कि संगत अपने कड़े परिश्रम (धर्म की कीर्त) से अर्जित करती हैं और अपनी श्रद्धा से लंगर में भेंट कर गुरू की खुशी प्राप्त करते हैं। तभी तो लंगर प्रसाद के रूप में ग्रहण करने पर जन-साधारण का मन शुद्ध हो जाता है क्योंकि उस में काला धन नहीं होता।

हुमायूँ का गुरू दरबार में आगमन

बादशाह हुमायूँ कन्नौज के युद्ध में शेरशाह सूरी से सन् 1540 में पराजित होकर पंजाब की ओर बढ़ा ताकि पुन: युद्ध की तैयारी के लिए किसी सुरक्षित स्थान में शरण ली जाए। उस कठिन समय में उसके घनिष्ठ मित्रों ने उसे परामर्श दिया कि वह गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव जी की शरण में जाकर उनसे आशिर्वाद प्राप्त करे। जिस से पुन: विजय प्राप्त हो सके। क्योंकि आपके पिता बाबर को इस दर से आर्शीवाद प्राप्त हुआ था। अत: हुमायूँ अपने सैनिकों के साथ खडूर नगर पहुँचा। उसने स्थानीय लोगों से गुरूदेव के आश्रम के विषय में पूछा तो मालूम हुआ कि गुरूदेव का दरबार सामने वाली टेकरी पर निर्मित दिखाई दे रहा है। यह जानकर उसको आश्चर्य हुआ। वास्तव में वह अनुमान लगा रहा था कि गुरू नानक देव फकीरी वेष में विचरण करते थे। अत: यह भी किसी साधारण सी कुटिया इत्यादि में निवास करते होंगे। खैर..... वह मन ही मन में उधोड़-बुन करता दरबार के बाहर घोड़ों को भगाते हुए अन्य अधिकारियों सहित पहुँचा परन्तु आगे गुरूदेव के सेवकों ने उसे रोक दिया और कहा – इस समय गुरूदेव का दरबार लगा हुआ है, वे संगत के समक्ष प्रवचन कर रहे हैं। इस लिए आप इस समय उनको अकेले में नहीं

मिल सकते। यदि मिलना ही चाहते हैं तो घोड़ों से उतरकर संगत रूप धारण कर दरबार में विराज जाएं। वे समय आने पर आपको स्वयं बुला लेंगे। हुमायूँ गुरूदेव के दरबार में संगत रूप धारण करके बैठने के सहमत नहीं हुआ। अत: वह बाहर प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। जब दरबार की समाप्ति हुई तो बहुत बड़ी संख्या में श्रोतागण बाहर निकले। यह देखकर उसे और भी आश्चर्य हुआ। भीड़ के छट जाने पर जब हुमायूँ अन्दर प्रवेश करके गुरूदेव के सम्मुख उपस्थित हुआ परन्तु गुरूदेव उस समय पहले से आए अन्य जिज्ञासुओं से वार्तालाप कर रहे थे। अत: वह अपनी बारी आने की फिर से प्रतीक्षा करने लगा। गुरूदेव ने उसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया कि कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति उनसे मिलना चाहता है। वह तो सामान्य रूप से बारी-बारी सभी को मुखातिब होकर उन लोगो का दुख-सुख पूछकर उनसे विचार-विमर्श कर रहे थे। अब हुमायूँ से न रहा गया। वह चाहता था कि गुरूदेव उसको एक बादशाह होने के नाते विशेष आदर देकर अतिथि सत्कार करें। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इस पर हुमायूँ धैर्य खो बैठा और पराजय की हीन भावना से ग्रस्त खिन्न हो उठा। उस में शासक होने का अभिमान जाग उठा, वह अपनी उपेक्षा होती देखकर विचलित हो उठा और उसका मानसिक संतुलन बिगड़ा तभी उसने बिना सोचे समझे म्यान से तलवार बाहर निकाल ली। इस पर गुरूदेव ने मुस्कुराते हुए व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा - ''यह तलवार शेरशाह सूरी के विरूध रणक्षेत्र में तो म्यान से बाहर नहीं निकली और अब फकीरों के विरूध इस का प्रयोग कर रहे हो।'' यह सुनकर हुमायूँ बहुत लज्जित हुआ। उसने तुरन्त अपनी भयंकर भूल पर पश्चाताप किया और क्षमा याचना की। परन्तु अब क्या हो सकता था ? भूल तो हो चुकी थी। गुरूदेव ने उसे समझाते हुए कहा - ''यदि कुछ प्राप्ति की कामना मन में हो तो व्यक्ति को मन में नम्रता धारण करके याचक बनकर फकीरों के दर पर जाना चाहिए। अहंभाव में कभी किसी को कुछ प्राप्ति नहीं होती। यह सिद्धान्त सर्वमान्य सत्य है। यदि इस समय तुम नम्रता धारण करके विनती करते तो हम अभी दिल्ली का तख्त तुम्हें दिलवा सकते थे। परन्तु अब तुम्हें लम्बे समय के बाद बहुत संघर्ष के पश्चात फिर से तख्त प्राप्त होगा। इस पर हुमायूँ लौट गया।

चौधरी मलूका

श्री गुरू अंगद देव जी के पड़ोस में खडूर ग्राम का चौधरी मलूका भी रहता था परन्तु धन तथा पद के कारण सदैव अभिमानी जीवन व्यतीत करता था। धान की अधिकता के कारण बहुत से व्यसन भी इसे लगे हुए थे। जिसमें शराब प्रमुख व्यसन था। नशों की अति के कारण उसे बहुत से रोगों ने धीरे-धीरे जकड़ लिया और उसे मिरगी के दौरे पड़ने लगे। उपचार करने पर भी जब यह रोग ठीक नहीं हुआ तो कुछ चिन्तकों ने उसे परामर्श दिया कि आपके पड़ोसी अंगद देव जी हैं, आप उनकी शरण में जाएँ, वहाँ से आपको अवश्य लाभ होगा। चौधरी मलूका सत्-संगत में बिलकुल भी विश्वास नहीं रखता था। वह गुरूदेव को वही पुराना किरयाने वाला दुकानदार ही समझता था। उसको इस बात का एहसास भी न था कि गुरू अंगद देव जी अब गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी हैं। वह तो बस उनको वही भाई लहणा जी ही मानता था। अत: उसके हृदय में गुरूदेव के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता था। किन्तु मरता क्या न करता, लोगों के आग्रह पर वह एक दिन गुरूदेव के पास उनके घर आया और कहने लगा - ''यदि आप मेरी मिरगी हटा दें तो मैं आपको मानने लग जाऊँगा।'' गुरूदेव ने उसकी व्यंग्य भरी बात सुनी और कहा - ''प्रभु सबका भला चाहने वाला है, उसके आगे प्रार्थना करो। करतार भली करेगा।'' परन्तु उसके सम्बन्धी गुरूदेव के चरणों में गिर पड़े कि कोई उपाय करें। गुरूदेव ने सम्बन्धियों की नम्रता के कारण वचन किया यदि चौधरी शराब का त्याग कर दे तो मिरगी चली जाएगी। ऐसा ही हुआ। चौधरी ने मिरगी के डर के मारे शराब पीना छोड़ दिया। गुरूदेव के वचनों के कारण उसे मिरगी का दौरा भी नहीं पड़ा। एक दिन भीगे मौसम के कारण चौधरी ने शराब पी ली और वह घर की छत पर जाकर पड़ोस में विराज रहे गुरूदेव को सम्बोधित करते हुए कहने लगा - ''लहणेया, आज तो मैंने पी ली है, देखो न अभी तक मिरगी तो नहीं आई।'' उत्तर में गुरूदेव ने कहा - ''तुमने वचन तोड़ा है, मिरगी आई की आई।'' देखते ही देखते उसे मिरगी का दौरा पड़ा। वह दौरे में छत से नीचे गिरा और मर गया। इस पर उसके निकटवर्ती गुरूदेव की शरण में आए और बहुत प्रार्थनाएं करने लगे कि इसे क्षमा दान दे। परन्तु गुरूदेव जी ने कहा - ''हम भी क्या कर सकते हैं ? प्रकृति ने मृत्यु का जो खेल रचा है वह अटल सच्चाई है। वह तो किसी न किसी बहाने अवश्य ही आएगी।''

पण्डित जवेद

गुरू अंगद देव जी की स्तुति सूनकर एक ब्राह्मण गुरूदेव के दर्शनों के लिए खडूर नगर पहुँचा। वहां पर बिना भेदभाव के लंगर प्रथा देखकर चकित रह गया। पहले-पहल तो वर्ग विहीन समाज की स्थापना उसे एक स्वप्न मात्र प्रतीत होने लगी परन्तु कुछ दिन रहकर गुरू उपदेश सुनकर उसके मन से जाति अभिमान जाता रहा वह जान गया कि वास्तव में उज्ज्वल आचरण ही

जीवन को सार्थक कर सकता है। अतः उसने गुरू घर में रहकर जाति अभिमान मिटाने की चेष्टा में लंगर तैयार करने की सेवा करनी आरम्भ कर दी वह अब सभी को एक समान मानव मानने लगा तथा बिना भेदभाव सबकी समान रूप से सेवा करने लगा। परन्तु वह स्वयं अनुभव कर रहा था कि मेरा अहं भाव जड़ से नहीं मिटा अतः उसने इसके लिए कड़ी साधना प्रारम्भ कर दी। जब संगत भण्डारे में से भोजन ग्रहण करके जूठे पत्ते अथवा बर्तन छोड़ जाए तो पण्डित जवेद जी उनके बर्तन साफ करते अथवा जूठे पत्रे उठाकर फेंकते किन्तु उस समय सावधानी पूर्वक उन में बची जूठन एक कोने में जमा करते रहते जब अवकाश का समय होता तो वह लंगर से स्वच्छ भोजन न लेकर उसी जूठन का सेवन करके अपनी उदर पूर्ति कर लेते। इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये। एक दिन माता खीवी जी का ध्यान गया कि पण्डित जवेद जी को कभी भोजन करते नहीं देखा। आखिर यह कहां से भोजन करते हैं। अतः उन्होंने एक दिन छिपकर उसे संगत की जूठन खाते देखा तो वह बहुत क्षुब्ध हुई। उन्होंने पण्डित जी से इसका कारण पूछा तो उत्तर में वह बोले कि मैं लंगर पर स्वयं का भार नहीं डालना चाहता था। इस उत्तर से माता जी की संतुष्टी नहीं हुई। उन्होंने कहा – ''गुरू घर में किस वस्तु की कमी है ? एक सेवक के भोजन करनेपर कुछ कम हो जाएगा क्या ? सागर से एक चोंच चिड़िया भी पी ले तो क्या कमी आएगी। इस पर पण्डित जवेद ने कहा – ''वास्तव में, मैं अपने अन्दर से पूर्ण रूप से जाति अभिमान मिटा नहीं पाया था। इस लिए मैंने अपने शरीर को दण्ड स्वरूप जूठन खिलाई है कि हे मेरे शरीर अब कर ले ...... जाति अभिमान अब तू डूम है। इस प्रकार मैं अपने मन को समझा रहा था। जब इस कड़ी साधना का गुरूदेव को मालूम हुआ तो उन्होंने जवेद को कंठ से लगाकर हुक्म दिया कि आप आईन्दा स्वच्छ भोजन ही करेंगे क्योंकि अब आपके मन की बड़प्पन वाली मैल धाुल चुकी है और उसके स्थान पर नम्रता रूपी हरिनाम का वास हो चुका है अतः आप अपने शरीर रूपी हरि मन्दिर को पवित्र अन्न-जल ही खिलवाए ताकि उस में हरि नाम रूपी धन का विकास हो सके।

चौधरी बख्तावर

जीवन के प्रारम्भिक दिनों में गुरू अंगद देव जी ने हरीके पतण नामक स्थान, जो पंजाब की दो प्रमुख नदियों का मिलन स्थल है, में एक व्यापारी के रूप में कार्य किया था। यहां के पुराने मित्रों में से किसी व्यक्ति के घर पर पुत्र का शुभ विवाह था। अतः उसने गुरूदेव को विवाह पर नम्रता पूर्वक आमंत्रित किया। गुरूदेव ने एक पंथ दो काज को मद्देनज़र रखकर निमंत्रण स्वीकार कर लिया और हरीके पतण पधारे। इस विवाह में आपकी भेंट वहां के स्थानीय चौधरी बख्तावर के साथ हुई जो कि विवाह में सम्मिलित होने आया हुआ था। यह व्यक्ति एक मायावादी तथा अहंकारी प्रवृति का स्वामी था क्योंकि एक बड़ा जमींदार होने के कारण 72 गावों का लगान एकत्र करके सरकारी खज़ाने में जमा करवाना इसका कार्य था अतः इसे अपनी समृद्धि पर बहुत गर्व था। मेज़बान मित्र ने अपना मुख्य अतिथी जानकर गुरूदेव को एक विशेष ऊँचे मंच पर बैठाया। इस पर चौधरी बख्तावर रूष्ठ हो गया। वह बोला – ''प्रमुख अतिथि मुझे घोषित करना चाहिए था।'' मेज़बान दुविधा में पड़ गया। उसकी दुविधा को देखते हुए गुरूदेव ने चौधरी बख्तावर को अपने पास बैठा लिया। परन्तु संगत को चौधरी बखतावर का गुरूदेव के समान मंच पर बैठना न भाया क्योंकि वे अनुभव कर रहे थे कि चौधरी बख्तावर भले ही धनी है परन्तु आध्यात्मिक दुनिया में तुच्छ है इसका गुरूदेव के साथ बैठना कदाचित उचित नहीं है।

इस बीच चौधरी बख्तावर ने अनुभव किया कि उसका गुरूदेव के साथ बैठना किसी को भी नहीं भाया। सभी जन साधारण की दृष्टि उसको दुतकार रही थी अतः वह जल्दी ही भांप गया कि उससे बहुत बड़ी भूल हुई है। वह लोगों की दृष्टि से बचने के लिए गुरूदेव से विचार-विमर्श करने की चेष्टा करने लगा। उसने गुरूदेव से पूछा – ''आपने इतने कम समय में इतनी ख्याति कैसे प्राप्त कर ली है ?'' उत्तर में गुरूदेव नेकहा – ''यह ख्याति दुनियावी नहीं है, यह तो आध्यात्मिक दुनियां की है। जो कि किसी पूर्ण सतगुरू के सान्निध्य में रहने से प्राप्त होती है। बस शर्त यही होती है कि स्वयं को उनके चरणों में अपना अहंभाव त्यागकर पूर्ण रूप में समर्पित करना होता है।'' यह वचन सुनकर बख्तावर चौधरी का माथा ठनका। उसको अपनी भूल का एहसास होने लगा। उसने पूछा- ''क्या मुझे भी आध्यात्मिक दुनियां में स्थान मिल सकता है ?'' इस प्रश्न के उत्तर में गुरूदेव ने कहा – ''विधि सभी जिज्ञासुओं के लिए एक ही है। जो जिज्ञासु स्वयं का अहंभाव त्याग कर अपने को पूर्ण रूप में गुरू चरणों में समर्पित करेगा वह अपने द्वारा किए गये भक्ति भाव के परिश्रम से अमूल्य निधि की प्राप्तियां करता चला जाएगा।''

बख्तावर चौधरी के पूर्व संस्कार जाग्रित हो उठे। उसके भीतर हल-चल शुरू हो गई। वह विचारने लगा। भले ही मैं सांस्कारिक रूप में समपन्न हूँ परन्तु आध्यात्मिक दुनियां में तो शुन्य हूँ। वास्तव में आध्यात्मिक दुनियां की प्राप्तियां ही इस जीवन को सफल करती हैं तो मुझे यह समय खोना नहीं चाहिए। अब तक मैंने सांसारिक वैभव का बहुत आनंद लिया है, क्यों न परमार्थ का पंथी भी बनकर आत्मिक आनंद भी उठाया जाए। वह जल्दी से उठा, उसने क्षण भर में बहुत क्रांतिकारी निर्णय लिया। उसने गुरूदेव के संकेत को समझा और अहंकार त्याग कर विनम्रता की मूर्ति बनकर गुरूदेव के चरणों में शीश झुका कर दण्डवत प्रणाम करने लगा

और बोला - ''मुझे क्षमा करें, मुझसे भूल हुई, मुझे भी अपना शिष्य बनाकर नाम-दान देकर कृतार्थ करें।'' गुरूदेव ने उसे समर्पित देखकर आलिंगन में लिया और कहा - ''आध्यात्मिक दुनिया में यह दस्तूर है कि जो अपने भीतर की अहंकार रूपी दीवार को गिरा देता उसे नाम रूपी अमूल्य निधि स्वयं ही प्राप्त होनी शुरू हो जाती है।''

कीर्तनीये दादू और बादू

श्री गुरू अंगद देव जी के दरबार में प्रतिदिन कीर्तन की चौकी भाई मरदाना जी के मौसेरे भाई दादू जी और बादू जी किया करते, प्रभु की इन पर अपार कृपा थी। जब यह गुरू शब्द राग की बंदिशों में गाते तो संगत इनके मधुर कंठ से मंत्र मुग्ध ा हो जाती और घंटों गुरुवाणी का रसास्वादन करती। कीर्तन के आकर्षण से प्रतिदिन गुरु दरबार में हाज़री बढ़ती जाती। इस प्रकार भाई सत्ता और बलवन्डा जी का भी संगत में सम्मान बढ़ने लगा। यह देख कर कि हम गुरु के समक्ष गाते हैं तो संगत एकत्र होती है अन्यथा नहीं। कीर्तनीये भाईयों को अभिमान हो गया। विचारने लगे यदि हम शब्द गायन न करें तो गुरुजी के यहां संगत का आना न के बराबर रह जाए। इस सब का परिणाम वे लोग आकांक्षी बन गये उन के हृदय में सदैव यह विचार उत्पन्न होने लगा कि हमें गुरुदेव आय का आधा भाग दें। परन्तु यह बात वे स्पष्ट शब्दों में कह नहीं पा रहे थे। एक दिन गुरुदेव जी के दर्शनों को बहुत दूर से संगत आई उन में एक बृद्ध पुरुष जो की कीर्तन का रसीया था, ने भाई दादू और बादू जी से आग्रह किया कि हमने जल्दी लौट जाना है, कृप्या आप गुरु शब्द सुनाने का कष्ट करें। परन्तु कीर्तनीये भाईयों ने उस बृद्ध को बहुत रूखा उत्तर दिया और कहा - ''हर बात का समय होता है जब हम गुरु दरबार की चौकी भरेंगे तो शब्द सुन लेना।''

जब इस घटना का गुरुदेव को मालूम हुआ तो उन्होंने कीर्तनीये भाईयों से आज कीर्तन की चौकी न करने को कह दिया। तब उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कारण पूछा तो गुरुदेव ने कहा - ''जब हमने आप से एक वृद्ध पुरुष के रूप में शब्द सुनाने का आग्रह किया था तो आप ने शब्द सुनाया नहीं अब हमारी आप से शब्द सुनने की इच्छा नहीं है। अपनी गलती पर क्षमा याचना करने के स्थान पर वे रूष्ठ हो कर वापस अपने घर चले गये तब गुरुदेव ने भाई मरदाना जी के दोनों बेटों शजादा और मीर रज़ादा को बुला भेजा और उन को साज़ सोपकर कहा - ''आज से आप कीर्तन किया करेंगे जब इस बात का दादू और बादू को ज्ञान हुआ तो वे दोनों तुरन्त क्षमा मांगने चले आये। उदार चित गुरुदेव ने उन्हें क्षमा देकर फिर से सेवा में रख लिया।

सिद्धि प्राप्त योगी

पर्वतों पर योग अभ्यास द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाले कुछ योगी कुम्भ मेले में भाग लेने अथवा गंगा स्नान करने के प्रयोजन से कैलाश पर्वत (सुमेरू) से नीचे मैदानी क्षेत्र में आये तो उन्हें पंजाब के तीर्थ यात्रियों से ज्ञात हुआ कि गुरु नानक देव जी शरीर त्याग कर सच्च खण्ड प्रस्थान कर गये हैं और उन्होंने अपना उतराधिकारी एक ऐसे व्यक्ति को चुना है जो कुछ समय पहले एक साधारण दुकानदार था तो उनको बहुत आश्चर्य हुआ परन्तु जब उन्हें इस के अतिरिक्त यह मालूम हुआ के नानक जी ने इस साधारण व्यक्ति का चुनाव करने के पश्चात उसके कदमों में अपना सिर झुका दिया और सर्वस्व उस पर न्यौछावर कर दिया है तो उन के मन में जिज्ञासा ने जन्म लिया कि गुरु नानक देव जी तो जीवन भर किसी के सामने झुके नहीं, वह व्यक्ति कैसी प्रतिभा का स्वामी है, जिस के आगे वह झुक गये। अत: योगियों के मन में इच्छा हुई कि उस महान व्यक्तित्व के स्वामी के दर्शन करने चाहिए और उन पर पुन: अपनी योग मति का प्रचार कर के देखना चाहिए। अत: वे लोग मन में एक अभिलाषा लेकर खडूर नगर पहुंचे।

इन में भरथरी, चरपट, ईश्वर नाथ तथा गोपी चन्द प्रमुख थे। जब इन की खडूर नगर में गुरु अंगद देव जी से भेंट हुई तो उन्होंने प्रथम प्रश्न यही किया कि गुरु नानक देव जी अपने समस्त जीवन में किसी के आगे झुके नहीं अत: आप में वह कौन सा गुण है, जिस कारण अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी आप के आगे झुकने पर विवश हो गए। उत्तर में नम्रता के पुंज गुरु अंगद देव जी ने उत्तर दिया - ''जैसे पिता अपने बालक को धूल-मिट्टी से उठाकर अपने गले से लगा लेता है ठीक इसी प्रकार पिता स्वरुप गुरु नानक देव जी ने मुझ जैसे अनजान बच्चे को उठाकर गले लगाया है, यह उन की अपार कृपा है, बढ़पन है, बच्चे को उठाकर गले लगाना पिता की दया है, झुकना नहीं है। अत: गुरुदेव ने मुझ नाचीज़ पर दया की अपार वर्षा की है मैं सदैव उन का ;णी हूं।

ऐह किनेही दाति, आपस ते जो पाईऐ।।
नानक सा करमाति साहिब तुठै जो मिलै।।

पृष्ठ न0 474

गुरुदेव के नम्रता भरे उत्तर से योगी सन्तुष्ट हो गये परन्तु वे अपने योगमत की श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते थे अतः उन्होंने गुरु अंगद देव जी पर अपना प्रभाव डालने के लिए कहा – ''बिना अष्टांग योग के आत्मा निर्मल नहीं होती और उसके बल से सिद्धियां प्राप्त होतीं है। यदि सिद्धि का बल न हो तो समाज में प्रतिष्ठा नहीं बनती। आपने बिना सिद्धी के इतनी अधिक प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त की है ? उत्तर में गुरुदेव ने कहा – ''गुरु नानक देव जी हमें प्रेमा-भक्ति दे गये हैं। हम संसार के सभी प्राणियों को एक सम प्रेम करते हैं और हमने समाज में प्रेम बांटा है। शायद इस लिए हमें लोक प्रियता मिली है परन्तु आप गृहस्थों से घृणा करते हैं और उनकी निकटता से भाग कर पर्वतों में जा छिपे हैं। हमारा योग तो केवल प्रभु चरणों में अपनी सुरति एकागर कर वंदना करना ही है और गुरु शब्द की चाबी से दशम द्वार का ताला खोल लेते हैं। हम हठ योग से सहमति नहीं रखते इस से अमूल्य श्वासों की पून्जी नष्ट होती है क्योंकि यह विधियाँ जन-साधारण के बस की हो ही नहीं सकती। हम तो प्रभु को अपना हृदय समर्पित कर के उसे रिझाने की चेष्टा करने में विश्वास करते हैं। गुरुदेव हमें एक सूत्र दे गये हैं जिस के पालन से प्राप्तियां सहज हो जाती हैं।

एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है, बहुड़ि जनमि न आवा।।

पृष्ठ न0 795

अर्थात गुरु शब्द द्वारा हम जन्म-मरण का चक्र समाप्त करने में सफल हो जाते हैं।

इस प्रकार की विचार सुनकर योगी बोले – ''मोक्ष प्राप्ती के लिए सन्यास अनिवार्य है अन्यथा व्यक्ति माया के बन्धन नहीं त्यागता और बिना माया के बन्धन तोड़े मोक्ष मिल ही नहीं सकता। इस कार्य के लिए सन्यासी भेष चाहिए जिसमें गोदड़ी, डन्डा, विभूती, कर्म-कांड, रुद्राक्ष की माला, चिमटा, शंख, त्रिशूल, खिन्था, डमरु, सिंगी (सींग से बना हुआ बाजा) इत्यादि आवश्यक सामग्री है।

इस के उत्तर में गुरुदेव ने कहा – ''माया हृदय से त्यागी जाती है, शरीर से नहीं, घर-गृहस्थी भी गृहस्थ आश्रम में रहकर हृदय से विरक्त हो सकता है और गृहस्थी में रहने से व्यक्ति आत्म निर्भर रहता है। वह अपनी जीविका का बोझ दूसरों पर नहीं डालता। इस लिए उसकी प्रेमा-भक्ति सफल होती है। योगियों ने उत्तर में कहा – ''भिक्षा मांगने से मन में नम्रता आ जाती है। नम्रता के बिना अहंकारी मन प्रभु की निकटता नहीं पा सकता।'' इस पर गुरुदेव ने कहा – ''भिक्षा मांगने से व्यक्ति में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। जोकि व्यक्ति को कहीं का भी नहीं रहने देती। गुरु नानक देव जी ने इसीलिए लंगर प्रथा चलाई है। यदि कोई नम्रता का गुण धारण करना चाहता है तो यहां पर आकर जन-साधारण की सेवा करे जिससे नम्रता का विशेष गुण स्वयं ही सेवा करने वाले के हृदय में उभर आता है।'' इस सब विचार विमर्श के पश्चात योगी गुरुदेव से कहने लगे – ''आप से हम सन्तुष्ट हुए हैं, अतः हमसे कुछ मांग लें क्योंकि हमारे पास समस्त प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियां हैं। इस पर गुरुदेव ने कहा – ''गुरु नानक के दरबार में किसी वस्तु का आभाव तो है ही नहीं, हमें तो कुछ भी नहीं चाहिए।'' परन्तु योगी हठ करने लगे और आग्रह करने लगे कि हम कुछ गुरु नानक देव के घर की सेवा करना चाहते हैं, अतः कुछ मांग लो। इस बार गुरुदेव ने कहा – ''अच्छा ठीक है, यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो हमें नम्रता ही दे दीजिए।'' इस अनोखी मांग को सुनकर सभी योगी चकराये और आपस में विचार करने लगे अंत में वे सभी गुरुदेव की शरण में पड़ गये और क्षमा याचना करने लगे तथा उन्होंने कहा – ''आप ने जो वस्तु मांगी है, वह हमारे पास भी नहीं है उस अमूल्य दात के लिए हम भी भिखारी हैं क्योंकि हम भी सदैव अभिमान की ही बातें करते हैं और अपनी अलोकिक शक्तियों का प्रयोग करके लोगों को अपनी ओर आकर्षित करके उनसे अपनी मान्यता करवाते रहते हैं।''

शीहें उप्पल को उपदेश

शीहा उप्पल एक कुलीन परिवार से सम्बन्धित समृद्ध व्यक्ति था। समाज में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। उसने गुरु नानक देव जी से गुरुदीक्षा के रुप में चरण पोल प्राप्त की हुई थी। यह प्रमार्थ का पांधी होने के नाते प्रभु भजन में लीन रहता था। उसकी तीन पुत्रियां थीं। कुछ वर्षो पश्चात सौभाग्यवश उसके यहां एक पुत्र ने जन्म लिया। इस हर्ष-उल्लास के कारण उसने अपनी बिरादरी के लिए एक प्रीति भोज का आयोजन किया परन्तु कुछ खुशामदी लोगों ने उसको विवश किया कि स्मारोह बहुत धुम-धाम से किया जाना चाहिए। अतः इसमें भोजन में मांस-मदिरा का प्रबन्ध भी किया जाए। शीहा उप्पल यह बात मानने को तैयार नहीं हुआ। उसका कहना था कि मैं गुरु का शिष्य हूं अतः मुझे मास-मदिरा वाला प्रीति भोजन करना शोभा नहीं देता। यदि मैं ऐसा करता हूं तो

म ` र ा
जनसाधारण पर गलत प्रभाव पड़ेगा परन्तु कुछ निकटवर्ती उसके विचार को नकारते हुए उसे समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने और बड़े लोगों से नए सम्बन्ध सथापित करने के लिए प्रोत्साहित करने लगे। इन सब बातों से उप्पल शीहां दुविधा में पड़ गया। वह विचारने लगा कि एक तरफ गुरु उपदेश है, जिससे मैंने जीवन सफल करना है। दूसरी तरफ लोक बढ़ाई तथा धन उपार्जन के साधन, मैं किस राह को चुनूं ? उसकी इस दुविधा देखकर उसकी सुजान पत्नी ने उसे परामर्श दिया कि वह गुरु नानक देव जी के उत्तराधिकारी गुरु अंगद देव जी के पास जाएं और वहां उनके समक्ष अपनी दुविधा रखें, यह बात शीहा उप्पल के मन को भा गई। वह अपनी पत्नी तथा नवजात शिशु को लेकर गुरु अंगद देव जी के दरबार में उपस्थित हुआ। गुरुदेव ने शिशु को आर्शीवाद दिया और कहा - ''जीवन भटकने का नाम नहीं दृढ़ता से आदर्श मार्ग पर चलकर दिखाओ। वस्तु वहीं सेवन करो और करवाओ जो गुरु को अर्पित की जा सके। यदि कोई बाधा उत्पन्न होती है तो घर पर पहले साध-संगत बुलाने का आयोजन करो। तद्पश्चात गुरु के लंगर का आयोजन करके सभी लोगों को उसमें सम्मिलित होने का आग्रह करें। सब कार्य गुरु कृपा से सफल होंगे। और गुरुदेव ने उसे समझाया :-

नानक दुनीआ कीआं वडिआईआं अगी सेती जालि।।
ऐनी जलीई नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि।।2।।

पृष्ठ न0 1290

बालक के वियोग में माता का रुधन

गुरु अंगद देव जी एक दिन अपने नित्य कर्म के अनुसार अमृत वेला में अपनी सुरति एकाग्र कर प्रभु चरणों में लीन थे तो उनके भजन में एक महिला के करुणामयी रूधान की तीव्र ध्वनि ने विघ्न बाधा डाल दी। उन्होंने तुरन्त एक सेवक को पता लगाने के लिए भेजा कि महिला इस समय क्यों रूधान कर रही है ? सेवक ने लौट कर बताया कि इस महिला के बालक का निधान हो गया है। अत: वह विलाप कर रही है। तब गुरुदेव के मुख से सहज में निकला कि आईन्दा किसी भी मां के पुत्र का यहां पर देहांत नहीं हुआ करेगा। सभी जानते थे कि गुरुदेव के मुख से निकला शब्द सदैव सत्य होता है परन्तु एक सेवक ने शंका व्यक्त की कि ऐसा कब तक होता रहेगा। गुरुदेव ने अपने सहज में निकले वाक्य को सुधार दिया और कहा जब तक मेरा यह शरीर इस मानव समाज में रहेगा। कहा जाता है कि उस घटना के पश्चात ऐसी कोई घटना नहीं घटी कि किसी व्यक्ति की मां जीवित हो और उसका बच्चा चल बसा हो।

हेमू

'हेमू' शासक सलेम शाह का वरिष्ठ अधिकारी था। वह हुमायूं की पराजय के समय मन में एक सपना संजोए था कि देश में अराजकता के दौर से लाभ उठाकर स्वयं का शासक बन जाऊँ। इसलिए वह किसी पूर्ण पुरूष से वरदान प्राप्त करना चाहता था कि वह मुझ से प्रसन्न होकर मुझे दिल्ली का शासक घोषित कर दे। उसके मन में गलत धारणा बनी हुई थी कि पीर-फकीर अथवा संत-गुरू इत्यादि धन द्वारा सेवा करने मात्र से रीझ उठते हैं और मुँह मांगी वस्तु का वरदान दे देते हैं। इसलिए वह विचार रखता था कि इन लोगों को खुश करना कौन से कठिन कार्य है। यदि मैं बहुत बड़ी धनराशी अथवा भूमि-जागीर इत्यादि भेंट कर दूँ तो मेरी मन्शा पूर्ण होने में कोई रूकावट नहीं होगी। अत: वह गुरू नानक के उत्तराधिकारी की खोज करता खडूर नगर पहुँच गया।

वहां पर सिखों ने उसका हार्दिक स्वागत किया और लंगर में से भोजन ग्रहण करने का आग्रह करने लगे किन्तु हेमू ने सेवादारों से कहा हमारे लिए विशेष प्रकार के व्यंजन तैयार करके भोजन व्यवस्था की जाए और मुझ से इस कार्य के लिए धन ले जाएं। इस पर सेवादार ने उनको गुरूघर की मरयादा विस्तार से बताई और कहा यह गुरू नानक का दर-घर है, यहां सभी के लिए एक सा भोजन ही परोसा जाता हैं और किसी व्यक्ति विशेष से भोजन का दाम भी नहीं लिया जाता। जो तैयार है वही सभी को सेवन करना पड़ता है। हेमू ने सेवादारों को प्रभावित करने के लिए अभिमान भरी बातें कही - ''मैं इस समय मंत्री पद पर हूँ, मुझमें हर प्रकार की क्षमता हैं, गुरू घर को जागीर इत्यादि देने का मन बनाकर आया हूँ, यदि आप मेरे लिए विशेष आतिथि सतकार का आयोजन करवा दे तो मैं गुरू घर के लंगर इत्यादि के लिए बहुत बड़ी धनराशी अर्पित कर दूँगा।''

इस पर सेवादारों ने पुनः उसे समझाने का प्रयत्न किया कि यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है अतः यह फकीरों का दर है। यहां राजा-रंक सब एक समान है। किसी की भेंट छोटी या बड़ी नहीं मानी जाती परन्तु उसके मन से बड़प्पन का भ्रम न गया और वह कहने लगा - ''मेरी भेंट तुरन्त गुरूदेव से करवा दें।'' उसे फिर उत्तर मिला - ''आप को इस कार्य के लिए भी प्रतीक्षा करनी होगी क्योंकि गुरूदेव किसी व्यक्ति को भी विशेष रूप से नहीं मिलते। वह तो दरबार की समाप्ति पर सभी को उनकी बारी आने पर ही समान रूप से मिलते हैं। इस पर हेमू बहुत छटपटाया परन्तु करता भी क्या ? किसी ने भी उसे एक साधारण व्यक्ति से अधिक मान नहीं दिया। समय आने पर उसकी भेंट गुरूदेव से करवा दी गई। हेमू गुरूदेव के समक्ष भी अपना अहंभाव त्याग नहीं पाया। उसने बनावटी तथा झूठी नम्रता प्रारम्भ में दिखाई परन्तु जल्दी ही वह अपने पुराने अंदाज में बोला - ''मैं इस समय मंत्री पद पर हूँ अतः मैं आपके लंगर इत्यादि के लिए जागीर तथा बहुत बड़ी धनराशी अर्पित करने आया हूँ जिस से यहाँ के कार्य निर्विघ्न सामान्य रूप से चलते रहे।

गुरूदेव ने उसकी चापलूसी वाली मन्शा देखी और उत्तर दिया - ''हेमू, हमें सरकारी खजानों से कुछ भी नहीं चाहिए। हमारे यहां सभी कार्य परमेश्वर की आज्ञा से संगत की लाई गई वस्तुओं से होते हैं और किसी वस्तु की कमी नहीं आती और सदैव बरकत बनी रहती है। रही बात जागीर की तो यह धरती किसी की भी स्थाई रूप से नहीं रही। इसके मालिक समय-समय पर बदलते रहते हैं, अतः आपके द्वारा लाया गया जागीर का पट्टा हमें नहीं चाहिए।

हेमू अपना सा मुँह लेकर वापिस चला गया।

तपस्वी शिवनाथ

एक बार किसी घरेलू कार्य से आप छुट्टी लेकर अपने घर बासरके गांव गये हुए थे तो स्थानीय किसानों ने सूखा पड़ने के कारण गुरू अंगद देव जी के समक्ष वर्षा न होने की समस्या रखी किन्तु गुरूदेव ने किसानों से कहा कि सब कुछ प्रभु इच्छा से ही ठीक होता है। अतः आप लोग उस मालिक पर भरोसा रखें। परन्तु किसान इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। वह अपना धैर्य खो चुके थे। किसानों ने खडूर नगर में बसने वाले योगी शिवनाथ से विनती की कि वह अपनी चमत्कारी शक्ति से वर्षा करवा दे। उसने किसानों के सामने एक शर्त रखी कि यदि वह गुरू अंगद देव जी को खडूर नगर छोड़ कर कहीं दूर बसने को विवश कर दें तो मैं वर्षा करवा सकता हूँ। किसानों ने यह बात गुरूदेव से कही तो वह प्रसन्नचित्त कहने लगे यदि हमारे यहाँ से जाने पर वर्षा हो सकती है तो इसमें हमें भी हर्ष होगा और वे खडूर नगर त्याग कर दूर चले गये। किन्तु योगी शिवनाथ वर्षा करवाने में असमर्थ रहा। उसने बहुत से तन्त्र-मन्त्र किये परन्तु उनका कोई प्रभाव देखने को ना मिला। उन्हीं दिनों अमर दास जी बासरके गांव से खडूर नगर लौट आए। किसानों द्वारा गुरू अंगद देव जी से किये गये खडूर नगर त्यागने के अनुरोधा के बारे में जान कर अमर दास जी बहुत रूष्ठ हुए तथा विचारने लगे, मेरे गुरू का अपमान इस योगी द्वारा करवाया गया है। यह मेरे लिए असहनीय है। अतः उन्होंने किसानों से कहा - ''यागी से बल-पूर्वक वर्षा करवाने का प्रयत्न करें, यदि वह वर्षा करवाने में असमर्थ रहता है तो उसे आश्रम से बाहर घसीट लाएं। जहाँ-जहाँ से उसे ले जायेंगे, वहाँ-वहाँ प्रभु कृपा से खूब वर्षा होगी। किसानों ऐसा ही किया। योगी ढोंगी था, अतः उसे घसीटते ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। खेतों में घसीटने से योगी मारा गया। इस घटना पर गुरू अंगद देव जी, सेवक अमर दास जी से रूष्ठ हुए। उन्होंने कहा - ''योगी अपनी जीविका के लिए ढोंग करता था, परन्तु हमें संयम से काम लेना चाहिए था। हमारे से किसी का अनिष्ट नहीं होना चाहिए और न ही हमें प्रभु के कार्यों में कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। क्योंकि भक्तों को उसकी रज़ा में राज़ी रहना अनिवार्य होता है। इस पर अमर दास जी ने क्षमा याचना की।

गोइंदा मरवाह

शाही सड़क के किनारे व्यास नदी के उस पार पश्चिमी क्षेत्र में एक बड़े व्यापारी गोइंदा मरवाह की भूमि थी जो हर दृष्टि से नगर बसाने के लिए उपयुक्त थी क्योंकि शाही सड़क के यात्रियों को इसी स्थान से नदी पार करने के लिए स्थानीय पतन से नावों की सहायता लेनी पड़ती थी। अतः आवागमन के कारण एक अच्छा व्यापार केन्द्र बनाया जा सकता था। इसी कारण गोइंदे के चचेरे भाईयों ने भूमि पर अवैध कब्जा कर लिया। लम्बे समय की मुक्कदमे-बाजी के पश्चात गोइंदा पुनः उस भूमि का पट्टा प्राप्त करने में सफल हो गया। गोइंदे ने नगर बसाने की योजना को कार्य रूप दिया परन्तु विरोधी पक्ष उनके निर्माण कार्य को रात के अंधकार में विनाश में बदल देते और जन-साधारण में अफवाह फैलाते चले गये कि यह स्थान भारी है क्योंकि यहाँ प्रेत-आत्माएं रहती हैं जो कि नगर बसाने में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। अतः कई कारीगर काम छोड़कर भाग गये। इन सब बातों को ध्यान में रखकर भाई गोइंदा जी ने गम्भीरता से विचार बनाया और खडूर नगर पहुँच कर गुरू अंगद देव जी की शरण ली तथा विनती

की कि हे गुरूदेव मैं व्यास नदी के उस पार नगर बसाना चाहता हूँ। जो कि मेरे प्रतिद्वन्दी बसाने नहीं देते। यदि यह कार्य आप अपनी सरपरस्ती में करवा दें तो इस क्षेत्र के सभी निवासियों का भला होगा क्योंकि यह स्थान आवागमन तथा व्यापार की दृष्टि से उत्तम है।

दूर दृष्टि वाले गुरूदेव जी ने भाई गोईंदे का अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपने प्रिय शिष्य अमर दास को आदेश दिया कि वे भाई गोइंदे के साथ जाएं और उनकी सहायता करें।

गुरू आदेश पाकर अमर दासे जी ब्यासा के उस पार पहुँचे और सभी को एकत्र कर प्रभु चरणों में अरदास (प्रार्थना) की कि हे विश्व-स्वामी कृपा करें और नगर निर्विघ्न उन्नति करे - इस प्रकार नगर की आधारशिला रखी गई। इस प्रार्थना में प्रतिद्वन्दी पक्ष के सदस्य भी आमन्त्रित किए गए थे अत: उनके हृदय की मैल ल गई और वे लोग सहयोग देने लगे। जल्दी अमर दास जी ने नगर का नामकरण किया और सर्व-सम्मति से भाई गोइंदे के नाम पर ही इस नगर का नाम गोइंदवाल रखा। गुरू कृपा से गोइंदवाल दिन दूनी, रात चोगुणी उन्नति करने लगा। इस प्रकार गुरू अंगद देव जी ने अमर दास जी को आदेश दिया कि आप बासरके गांव से अपना परिवार वहां लाएं और वहीं बस जाएं। अमर दास जी ने आदेश का पालन किया। वह दिन में एक बार अवश्य ही गुरू दर्शनों को आते और सेवा का कार्य समाप्त कर संध्या को वापस 3 कोस यात्रा कर गोइंदवाल परिवार के पास पहुँच जाते। यही कर्म कई वर्ष चलता रहा।

भाई माहणे जी

अभिमान व्यक्ति को लक्ष्य तक नहीं पहुंचने देता उल्टा विनाश की तरफ धकेल देता है। भाई माहणा जी गुरू की स्तुति सुनकर खडूर नगर आए और अपना जन्म सफल करने के लिए लंगर में सेवा में जुट गए। परन्तु अज्ञानता वश वह भक्तजनों अथवा श्रद्धालुओं के साथ उनसे भूल-चूक होने पर कठोर शब्दावली का प्रयोग करते अथवा अभिमान में अपनी सेवा का बड़प्पन जताते हुए भक्तजनों को नीचा दिखाते। उनकी इस त्रुटि का जब गुरूदेव को मालूम हुआ तो उनको चिन्ता हुई। एक दिन किसी कारण वश वह किसी भक्त से उलझ पड़े तथा उसको बहुत कटू-वचन कहे। भक्तजन अपना अपमान सहन नहीं कर पाए। उसने गुरूदेव को घटना को विवरण दिया और कहा यदि आपके सेवक जन-साधारण का इसी प्रकार अपमान करेंगे तो स्वाभाविक है कि सिखी का प्रचार तो क्या होगा, इसके विपरीत जनता आपसे दूर हो जाएगी।

गुरूदेव ने तुरन्त भाई माहणे को बुला भेजा और उन्हें समझाते हुए कहा - ''आप सेवा किस लिए करते हैं ? मन की मैल धोने के लिए, यदि यहाँ पर सेवा करते समय भी मन से क्रोध न गया तो सेवा का क्या लाभ ? प्राप्तियाँ तो तभी होती हैं जब व्यक्ति, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भी उस प्रभु का वास देखे और सेवा व्यक्ति की नहीं प्रभु की जानकर करे। यह तभी सम्भव हो सकता है जब आप स्वयं के अस्तित्व को मिटा डालें और बिना अहंभाव (अभिमान) के संगत की सेवा में समर्पित हो जाएं।

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु।।
नानक जिस नो लगा तिसु मिलै, लगा सो परवानु।।
पृष्ठ न0 474

भाई महणा जी ने अवज्ञा के लिए क्षमा-याचना की और कहा - ''मुझसे भयंकर भूल हुई है। मैं सदैव सावधानी पूर्वक सेवा करूँगा और अपनी जीह्वा पर पूर्ण नियंत्रण करने का प्रयास करूँगा।

दीपा, नारायण दास तथा बुलां

दीपा जी, नारायण दास तथा बुलां जी घनिष्ठ मित्र थे। अवकाश के समय मिल कर बैठते और विचार विमर्श करते कि सांसारिक दु:खों-कलेशों से कैसे छुटकारा प्राप्त हो सकता है, परन्तु कोई राह न सूझती। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जा रही थी और यौवन की समाप्ति पर गृहस्थी के झमेले और अधिक जकड़ रहे थे, जिनसे उनके मन की शांति भंग रहती थी। वे सभी गृहस्थी के कार्य निष्ठापूर्वक करते, कभी निखट्टुओं की तरह मुँह नहीं मोड़ते थे। परन्तु गृहस्थी की दल-दल उनको और अधिक उलझा देती थी। अत: उनके मन में सांसारिकता के प्रति और गृहस्थी के प्रति वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा कि हम संसार त्याग दें और सुखी हो जाएँ। परन्तु ऐसा सम्भव न था क्योंकि घर से भागने से समस्याओं का समाधान तो होने से रहा, समस्याएँ तो और बढ़ेंगी ही। बस इसी उधोड़-बुन में उनको एक राह दिखवाई दिया कि किसी पूर्ण पुरूष की संगत करके उनसे जीवन को उचित नियमों से जीने की युक्ति सीखी जाए जिससे गृहस्थी में रहते हुए सुखमय, शांत तथा उज्जवल जीवन

जीया जा सके। ये तीनों मित्र माया के दुखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए किसी पूर्ण पुरूष की खोज में घर से निकल पड़े। खोजते-खोजते उनको किसी परमार्थ के पाधी ने बताया कि आप खडूर नगर जाएँ। वहाँ आपको एक गृहस्थी परन्तु माया से निर्लिप्त महापुरूष मिलेंगे जो गृहस्थी में रहते हुए उत्तम जीवन जीने का रहस्य बता सकते हैं। क्योंकि वह स्वयं ऐसी जीवन जीकर दूसरों के प्रेरणादायक कार्य कर रहे हैं।

यह सब जानकर भाई दीपा जी, नारायण दास जी और बूलां जी खडूर नगर पहुँचे। गुरूदेव से भेंट होने पर उन्होंने अपने वहाँ पहुँचने का प्रायोजन बताया। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - ''माया के सुख क्षण-भंगुर हैं। मनुष्यों को प्रभु की रज़ा में रहने से शांति मिलती है। अत: परमेश्वर को सदा अंग-संग (एकमेव) जानकर कार्य करें और घर लौट जाएँ क्योंकि आपका वैराग्य भावुक्ता मे लिया गया कदम है। जैसे ही समय व्यतीत होगा, आपको घर के सुख की अथवा प्रियजनों की याद आएगी तो आप लोग विचलित होकर भटकेंगे तब आप न गृहस्थी के योग्य रहेंगे न वैराग्य के। अत: मनुष्य को सदैव जीवन की समस्याओं के लिए गृहस्थ में रहकर ही संघर्ष करके प्राप्तियाँ करनी चाहिए। जो गृहस्थी अपना कर्त्तव्य पूर्ण करता हुआ विजयी की तरह संसार से प्रस्थान करता है वही सफल गृहस्थी अथवा जीवनमुक्त व्यक्ति है।

खानुँ, माहिआ तथा गोविंदा

गुरू अंगद देव जी के दरबार में सदैव संगत का तांता लगा रहता था। प्रत्येक श्रद्धालु अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरूदेव से मार्गदर्शन के कामना करता रहता था। अत: गुरूदेव सभी के प्रश्नों के उत्तर संयुक्त रूप से प्रात:काल के दरबार में अपने प्रवचनों में देते। एक दिन बटाला नगर से पिता ''खानुँ'', पुत्र ''माहिआ'' तथा उनका मित्र ''गोविंदा'' उपस्थित हुए। उन्होंने अवकाश के समय गुरूदेव के समक्ष अपनी जिज्ञासा रखी और पूछा - ''हे गुरूदेव, सच्ची भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है ?'' गुरूदेव ने उत्तर में कहा - ''आपका प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसका उत्तर समस्त संगत के लिए भी सार्थक होगा। अत: इसका हम विस्तृत उत्तर कल के दरबार में देंगे।

अगली प्रभात के दरबार में गुरूदेव ने संगत को सम्बोधित करते हुए भाई खानुँ जी के प्रश्न का उत्तर दिया और कहा - ''सच्ची भक्ति केवल वही हो सकती है जो अपने इष्ट परमेश्वर के संग एकमेव होने में सहायक सिद्ध हो जाये। अत: हमें लक्ष्य को सम्मुख रखाकर प्रेमा-भक्ति का एक मात्र सहारा लेना चाहिए।'' गुरूदेव ने भक्ति मार्ग की व्यारव्या करते हुए बताया - ''मुख्यत: भक्ति तीन प्रकार की होती है। पहली - नोधा भक्ति, दूसरी - प्रेमा भक्ति, तीसरी - परा भक्ति। परन्तु सबसे उत्तम भक्ति प्रेमा भक्ति है। जो प्रत्येक व्यक्ति सहज में गृहस्थ के कर्त्तव्य करता हुआ कर सकता है। उन्होंने भक्ति के कुछ विशेष अंगों का उल्लेख करते हुए बताया -

पहला - अवकाश के समय सत संगत में जाकर सावधानीपूर्वक गुरू के वचन सुनने चाहिए।
दूसरा - प्रभु परमेश्वर के गुण स्वयं गायन करें अथवा वाणी का उच्चारण करें।
तीसरा - समय को बिना कारण नष्ट न करें। जब भी अवकाश मिले, सुरति एकाग्र करके भजन करें।
चौथा - सभी प्रणियों में उस प्रभु का वास देखें। किसी को भी कष्ट न दें और हो सके तो जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता करें।
पाँचवां - प्रकृति के कार्यों में हस्तक्षेप न करें। प्रभु की आज्ञा मानकर सभी कुछ स्वीकार करें।
छठा - पदार्थों से मोह न करें। अपनी आवश्यकताएँ सीमित करें।
सातवां - अहंभाव त्याग कर अथवा हृदय में नम्रता धारण कर अपने को तुच्छ जानें।
आाठवाँ - यथाशक्ति जरूरतमंदों की सहायता करें।
नौवाँ - प्रभु को सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक जानकर कार्य करें।

मिलिएं मिलिआ ना मिलै, मिलै मिलिआ जे होई।।
अंतर आतमै जो मिलैए मिलिआ कहिऐ सोइ।।3।।

पृष्ठ न0 791

उपरोक्त विचार सुनकर सभी जिज्ञासुओं की इच्छा पूर्ण हुई और खानुँ, माहिआ और गोविंदा सेवा में जुट गये। अन्त में वे गुरू-दीक्षा प्राप्त करके घर को लौट गये।

साधू हरिनाथ

रमते साधू हरिनाथ जी भ्रमण करते हुए पंजाब आए। उनको अकस्मात् खडूर नगर आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने वहाँ पर गरू अंगद देव जी की स्तुति सुनी तो वह दर्शनों को आए और लंगर में भोजन ग्रहण किया। जब उन्होंने लंगर प्रथा में वर्ग विहीन समाज का निर्माण देखा तो वह आश्चर्य में आ गए। वैसे तो उनको प्रकृति के नियमों के अनुकूल यह सब दृष्टिगोचर हुआ। परन्तु पुराने संस्कारों से बन्धे होने के कारण उनको यह सब अनोखा प्रतीत हुआ कि मनु समृतियों की उपेक्षा कर समाज को वर्ण–आश्रम से मुक्त कर दिया जाए। वह सोचने लगे कि इस प्रकार तो सभी का धर्म भ्रष्ट हो जाएगा और हम अपना आध्यात्मिक जीवन भी नष्ट कर लेंगे। यह सब देखकर उनके हृदय में बहुत सी शंकायें उत्पन्न हुई और वह अपनी जिज्ञासाएँ लेकर गुरूदेव जी के समक्ष उपस्थित हुए और नम्रतापूर्वक विनती करने लगे कि आप मेरी समस्या का समाधान करें।

गुरूदेव ने कहा – ''आप निश्चिंत होकर प्रश्न पूछे हम आपके प्रश्नों का उत्तर देकर आपको सुतष्ट कर देंगे।'' इस पर हरिनाथ जी बोले, – ''जैसा कि आप जानते हैं, हमारे धार्मिक ग्रंथों में चार वर्णों का उल्लेख है और प्रत्येक मनुष्य को अपने वर्ण के अनुसार जीवन निर्वाह करना चाहिए और उसी प्रकार आचरण करना चाहिए, परन्तु आप तो वर्ण आश्रम मानते ही नहीं, भला इस प्रकार सभी का धर्म भ्रष्ट नहीं हो गया ?''

गुरूदेव यह सुनकर मुस्कुराए और बोले – ''यहीं आप भ्रम में हैं, प्रकृति ने सभी मनुष्यों को एक सा बनाया है तथा एक से जीने का अधिकार दिया है। उसके यहाँ कोई भेद–भाव नहीं है। अतः सभी मनुष्यों को एक ही धर्म है, वह है इस मानव योनी को सफल करना ताकि पुनर्जन्म से मुक्ति मिल जाए अथवा उस प्रभु में अभेद हो जाएँ। जहाँ तक वर्ण–आश्रम का नियम है, वह तो केवल मनुष्य के व्यवसाय को दर्शाता है कि वह किस विधी अनुसार अपनी जीवविका अर्जित करता है। इन बातो में प्रभु मिलन से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। गुरू नानक के घर में तो केवल प्रेमा–भक्ति पर बल दिया जाता है जो कि समस्त मानव समाज के लिए एक सम है। जिस मनुष्य के हृदय में प्राणी मात्र के लिए प्रेम होगा वह अवश्य ही प्रभु की निकटता प्राप्त कर लेगा।

साधू हरिनाथ यह सरल विचार सुनकर अति प्रसन्न हुआ और दण्डवत प्रणाम कर लौट गया।

अमर दास जी को गुरू गद्दी सौंपना

एक बार अमर दास जी वर्षा ऋतु में अर्ध रात्री के समय गुरूदेव जी के स्नान के लिए पानी की गागर ला रहे थे तो अधिक अंधेरे के कारण वह पड़ोसी जुलाहे की खड्डी से टकरा कर गिर पड़े परन्तु उन्होंने जल गिरने नहीं दिया। गिरने की ध्वनि सुनकर जुलाहे ने अपनी पत्नी से प्रश्न किया – ''इस तुफानी मध्यरात्री के समय बाहर कौन हो सकता है ?'' उत्तर में जुलाहे की पत्नी ने व्यंग्य–मय शब्दों में कहा – ''वही अमरू नीथावा होगा, जो अपनी वृद्धावस्था में भी समधी के द्वार पर पानी ढोता रहता है।'' यह बात अमर दास जी ने सुनी तो उत्तर दिया – ''पहले तो मैं नीथावा था परन्तु कमलिये अब तो मैं गुरू वाला हूँ। अब मैं नीथावा (बिना घर–बाहर के) कैसे हो सकता हूँ ? अमर दास जी के मुँह से यह शब्द निकलते ही वह स्त्री कमली अर्थात पगली हो गई, लगी मार–पीट करने और वस्त्र फाड़ने।

जब अमर दास जी पानी की गागर लेकर वापिस पहुँचे जो गुरू अंगद देव जी स्नान कर चुके थे। अतः उन्होंने उसी जल से अमर दास जी को स्नान करवा कर अपने आसन पर बिठा दिया और बारह वरदान दिए। निथावेओं के थांव, निआसरियों का आसरा, निओटियां की ओट, इत्यादि और उनको अपनी गद्दी देकर गुरू नानक देव जी का तीसरा उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और आदेश दिया कि आप गोइंदवाल नगर में गुरमति प्रचार करे और स्वयं ज्योति विलीन हो गये।